UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186632
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—707—25-1-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H294.4 J25A   Accession No. G.H.5450

Author जैन, सुशील कुमार

Title आत्मकल्याण सूत्र

This book s...

ब्राह्मण धर्म पर जो जैनधर्म ने अक्षुण्ण छाप मारी है, उसका यश जैनधर्म के ही योग्य है। अहिंसा का सिद्धान्त जैन-धर्म में प्रारम्भ से है। **——लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक**

हिन्दूधर्म पर इस धर्म का बड़ा प्रभाव पड़ा है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों की भांति विष्णु के चौबीस अवतार निश्चित कर मूर्तिपूजा प्रचलित करनी पड़ी। जैनों के सात तीर्थों की भांति हिन्दुओं ने भी सात पुरियों की महत्ता कायम की। जैनधर्म के महावाक्य 'अहिंसा परमो धर्मः' को स्वीकार कर इसे वैष्णवधर्म का मूल मन्त्र बनाया।

——सांवलिया विहारीलाल वर्मा

विश्व धर्म-दर्शन, पृ० १३१

इतिहास के इन महापुरुषों में से एक महावीर भी थे। उनको 'जिन' अर्थात् विजेता कहा जाता है। उन्होंने राज्य नहीं जीते; बल्कि अपनी आत्मा को, अपने अहं को जीता। उनको 'महावीर' कहा जाता है, परन्तु वह सांसारिक युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने वाले वीर न थे, वरन् आन्तरिक जीवन के द्वन्द्व में वीरता दिखाने वाले महावीर थे।

—डॉ० राधाकृष्णन्

हमारी संस्कृति, पृ० ८६

अपरिग्रह के सिद्धान्त समाजवाद से भी आगे है। जहां समाजवाद की सीमा है, उससे आगे अपरिग्रह है। समाजवाद अपरिग्रह में ही निहित है। अपरिग्रह का लक्ष्य भगवान व मनुष्य को एक बनाना है। धर्म क्या है? धर्म एक है। मानव धर्म है कि मनुष्य मनुष्य का शोषण न करे। समाज में ऊंच-नीच का भेद न हो। आर्थिक असमान्ताएं कम हों। मनुष्य समाजवाद में समान होता है। इस प्रकार अपरिग्रह और समाजवाद का अटूट सम्बन्ध है। **—मोरार जी देसाई**

मुद्रक : जयन्ती प्रिंटिंग वर्क्स, जामा मस्जिद, दिल्ली-११०००६

आत्म कल्याण सूर्योदय

('मानव से भगवान बनो' का परिवर्द्धित संस्करण)

लेखक

डा० मुनीन्द्र कुमार जैन

एम. ए. (इति.), बी. एस्सी. (कृषि), डी. एच. एस. (आनर्स),
डिप. (जर्न.), एलएल. बी., साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

प्रथम आवृत्ति

मूल्य रु ५/-

प्रकाशक

मै० अमीरसन पब्लिशर्स

डी-२/६ माडल टाउन, माल रोड, दिल्ली-११०००६

卐 विषय सूची 卐

1.	मंगलाचरण	दो
2.	विद्वानों की दृष्टि में जैन धर्म	तीन
3.	पंच परमेष्ठी का चित्र	पाँच
4	कर्म प्रधान विश्व रचि राखा	नौ
5.	नव देवताओं के चित्र	ग्यारह
6.	सामयिक ध्यान दर्पण	1
7.	सच्चे आप्त देव का लक्षण	2
8.	मन एवं मनुष्यपणा कारण बंध	9
9	सत्यार्थ आगम के लक्षण	12
10	केवल शुद्ध रूप का ध्यान	26
11.	णमोकार मन्त्र की महिमा	30
12.	दौलतराम जी कृत दर्शन स्तुति	33
13.	देव दर्शन स्तोत्र	35
14.	महावीराष्टक स्तोत्र	37
15.	स्वयंभू स्तोत्र भाषा	43
16.	ध्यान का स्वरूप व ध्यान विधि तथा चित्र	46
17.	प्राणायाम की विधि	66
18.	आत्मज्ञान सूर्योदय	73
19.	युग दर्शन---भगवान महावीर	74
20.	भगवान महावीर की मुख्य शिक्षाएं	85
21.	लेखक के बारे में	90

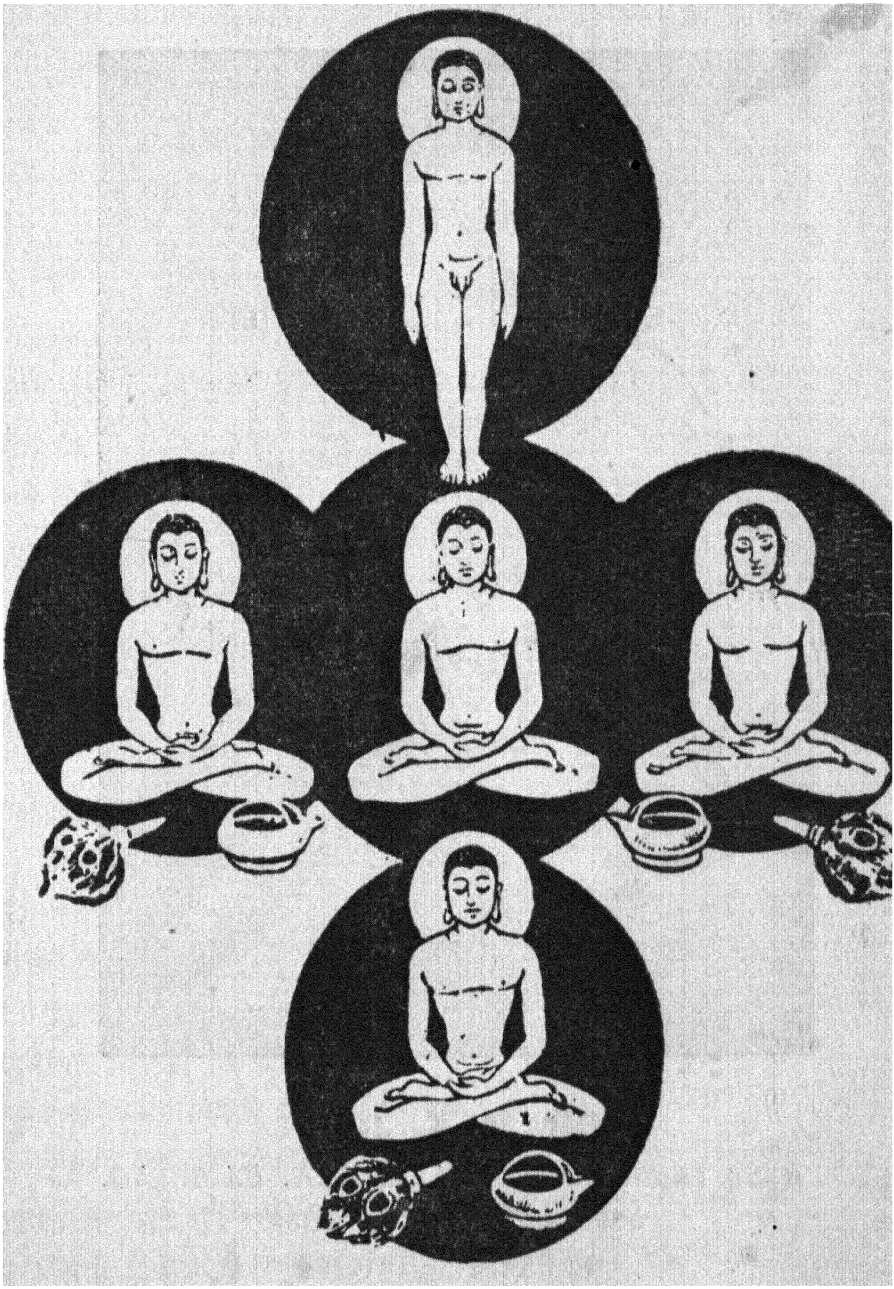

[पंचपरमेष्ठी]

DR. M. K. JAIN

B. Sc. (Agric.) D.H.S. (Hons.) M.A., L.L.B., J.D.
Sahityaratna, Sahityalankar

अवैतनिक प्रधान चिकित्सक

भ० महावीर धर्मार्थ होम्योपैथिक अस्पताल ट्रस्ट

डी-2/9 माडल टाउन; दिल्ली-9 (फोन 710661)

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा

बहुत वर्षों पहले की बात है, सैकड़ों या सहस्रों, भारत के किसी भाग में एक राजा राज्य करता था। वह साधु-सतों की बहुत सेवा करता था। एक बार एक साधु ने राजा की सेवा से प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। राजा ने वर मांगा कि मैं जो भी वस्तु हाथ से छू लूं वह सोना बन जाय। साधु ने कहा 'तथास्तु'।

राजा बहुत प्रसन्न था। हाथ से छूकर उसने अपने महल की दीवारें, फर्नीचर, बर्तन आदि सब सोने के बना दिए। फिर खाने का समय आया। परन्तु यह क्या ? रोटी, साग, सब हाथ से छूते ही सोना बन गया। राजा ने अपने इकलौते पुत्र को गोद में लेना चाहा। परंतु राजा के छूते ही वह भी सोने की निर्जीव मूर्ति बन गया।

अपनी भूल पर पछताकर राजा हाहाकार करने लगा। तुरन्त उसने साधु के पास जाकर विनती की और उनका वर लौटा कर अपने मन का सुख चैन वापस लिया।

यह कहानी सत्य हो या असत्य, माया के फंदे में फसा मानव कभी अपने मन को नहीं समझा पाया। मन को समझा कर और साध कर मनुष्य सामान्य मानव से भगवान बन सकता है।

हे बन्धु क्या इस विशाल मायावी ससार के भौतिक सुखों का रसास्वादन करते हुए कभी आपके मन ने अपनी आत्मा से पूछा कि 'तू कौन है ? कहाँ से आया है, और कहाँ जाएगा ?' शायद नही। शायद अभी आपने यौवन की दहलीज पर पहला कदम रखा है। या शायद आप अभी जीवन की उस मजिल से गुजर रहे है जिसे भरपूर जवानी कहा जाता है। अभी बालों की सफेदी, दाँतों का गिरना और चेहरे पर झुर्रियां पड़ना शुरू नहीं हुआ है।

क्या अभी आपने स्व० श्री के० सी० जे० की अमृत भरी स्वर लहरी पर थिरकते गीत, 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' या 'तेरी गठरी में लागा चोर' के गहन गम्भीर अर्थों पर ध्यान दिया ! शायद नहीं। पर क्या आप युधिष्ठिर और यक्ष के उस महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर को भी भूल गये जिसमें सबसे बड़ा आश्चर्य यह बताया गया था कि यह जानते हुए भी कि मनुष्य नश्वर है वह अपने को अमर समझकर काम करता है।

सामान सौ वर्ष का है पल की खबर नहीं। गगन मे दमामा बज रहा है। बाबुल (शरीर) का घर छोड़ कर वधु (आत्मा) पिया के देश जाने को तैयार है पर मन रूपी कोचवान संयम रूपी रास को ढीला छोड़ कर जीवन रूपी रथ पर सवार बेखबर चला जा रहा है।

हे भव्य आत्मा अपने मन की शक्ति का सदुपयोग कर। मन को सांसारिक प्रलोभनों से बचाकर आध्यात्मिक सुख की राह दिखा।

है सौख्य की इच्छा यदि, सुन्दर कर्म करते रहो।
खुद आप अपने पतन से, तुम हर समय डरते रहो॥

क्या तुम्हें मुनि बाल्मीकि का वह प्रसंग याद है जब वे अपने परिवार के पालन के लिए डाकू बने थे पर उनके पापों का भार उठाने को कोई सम्बन्धी तैयार न हुआ। किसी ने कहा है,

अपने लिये ऋण को कभी कोई दूसरा भरता नहीं।
अपने कर्म का भोग भी कोई दूसरा करता नहीं॥

कर्मों ने तो भगवान महावीर, श्रीराम, सती-सीता को भी अपना रंग दिखाया। बड़े-बड़े महाबली कर्मों का लोहा मान गये। परन्तु सम्यक् ज्ञान, चारित्र और दर्शन रूपी अंकुश से मन रूपी हाथी को साध कर उत्तम कर्मों के उपार्जन से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। किसी कवि के शब्दों में—

तुम आप अपने हो रिपु, तुम आप अपने मीत हो।
तुम आप अपनी हार हो, तुम आप अपनी जीत हो॥

मथुरा संग्रहालय में स्थित स्तूप के द्वार पर विभूषित पंच परमेष्ठि मंत्र

ॐ

卐 नमः सिद्धेभ्यः 卐

सामायिक ध्यानदर्पण

❋ मंगलाचरण ❋

सुरेन्द्र मुकुटाश्लिष्ट पादपद्मांशुकेसरं ।
प्रणमामि महावीरं लोक त्रितय मंगलम् ॥

भावार्थ :--प्रणाम करते हुए मत इन्द्रों के मुकुटों पर जिन देवाधिदेव प्रभु के चरणों की प्रभा प्रकाश मान हो रही है, ऐसे तीनों लोकों के मंगल स्वरूप श्री महावीर भगवान को मैं बारम्बार अष्टाँङ्ग नमस्कार करता हूं क्योंकि भगवान के बतलाये हुये मार्ग के द्वारा भव्य जीवों के ज्ञानावर्णादि अष्ट-कर्मों का नाश हो जाता है। इसलिये मंगल स्वरूप हैं। 'मं' शब्द का अर्थ पाप है और 'गल' शब्द का अर्थ नाश करना है जो पापों का नाश करे उसको मंगल कहते हैं, अथवा 'मंग' शब्द का अर्थ है सुख और 'ल' शब्द का अर्थ है लाना व प्राप्त करा देना, उसको मंगल कहते हैं। अरहंत, सिद्ध, साहू, और केवलि प्रणीत धर्म से पापों का नाश होता है और मोक्ष सुख की भी प्राप्ती होती है, इसलिये इस संसार में ये ही सर्वोत्तम मंगल कारक हैं और सच्चे आप्त हैं। इस प्रकार प्रथम ही मंगलाचरण करके सामायिक जिसको संध्या वंदन कहते हैं व ध्यान करने की क्रिया व आत्म मनन के स्वरूप का कुछ वर्णन

इस पुस्तक में किया जाता है जिसके करने से ही जीव इस अथाह रूपी संसार को पार करके जीवण मरण रूपी दुःख से मुक्त होकर मोक्ष रूपी अविनाशी सुख की प्राप्ति कर सकता है।

जैन धर्म में सच्चे आप्त देव का लक्षण (ईश्वर)

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञे नागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथाह्याप्तना भवेत ॥

(रत्नाकर प्रयोग वक्ताचार)

अर्थ—नियम से राग द्वेषादि अष्टादश दोष रहित वीतराग, भूत भविष्यत् वर्तमान का ज्ञाता सर्वज्ञ और परम हितोपदेशक बनाकर आगम का ईश ही आप्त अर्थात् सत्यार्थ देव होना है, निश्चय से और किसी प्रकार आप्तपना हो नही सकता।

भावार्थ—सच्चा देव वही है जो वीतराग, सर्वज्ञ, और हितोपदेशक हो। इन तीनों गुणों के बिना आप्तपना हो नही सकता। इनकी तो मुख्यता है और अनेक गुणाकर सहित होते हैं। जो देव आप ही दोष संयुक्त है वह दूसरे जीवों को कैसे निराकुल सुखी और निर्दोष बना सकता है। जो स्वयं क्षुधा त्रिषा, काम, क्रोधादि सहित है उसमें ईश्वरपणा कहां से हो सकता है। जो भव सहित है शास्त्रादिक को ग्रहण करता है जिसके द्वेष, चिन्ता, दुख आदिक निरन्तर बने रहते हैं जो कामी-रागी होने के कारण निरन्तर पराधीन रहता है, भला उसके

निराकुलता तथा स्वाधीनता कैसे संभव हो सकती है जहां निराकुलता तथा स्वाधीनता नहीं वहां सत्यार्थ वक्तापना नहीं। जिसके जन्म-मरण रोग लगा है, जिसके संसार भ्रमण का अभाव नहीं हुआ है, जो जरा आदि से ग्रसित हो सकता है उसके सुख-शाँति कहां ? इसलिए जो निर्दोष होता है सत्यार्थ रूप से उसी का नाम आप्त है, देव है। जो रागीद्वेषी होता है वह अपने पद के रागद्वेष को पुष्ट करने का ही उपदेश दिया करता है। इसलिये यथार्थ वक्तापणा तो वीतराग के ही संभव हो सकता है। जो सर्वज्ञ नहीं, उसके यथार्थ वक्तापणा नहीं। क्योंकि इन्द्रिय जनित ज्ञान तो सर्व त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों की अनन्तानन्त परिणति को युगपत एकसाथ पदार्थों की देखनेजानने की सामर्थ नहीं। इन्द्रियजनित ज्ञान क्रमवर्ता स्थूल पुद्गल की (जड़पदार्थ) अनेक समय में भई, जो एक स्थूल पर्याय को ही जानने वाला है। फिर भला अल्प ज्ञानी का उपदेश सत्यार्थ कैसे हो सकता है, सर्वज्ञ का ही उपदेश सत्यार्थ होता है। इसलिये सर्वज्ञ के ही आप्तपणा संभव है जो बिना भेद-भाव के यानी अतीन्द्रिय केवल ज्ञान के द्वारा जगत के प्राणी मात्र के हित और कल्याण के लिये यथार्थ उपदेश का करने वाला है। बिना किसी प्रकार की इच्छा को रखते हुए वही हितोपदेशी है। इसलिये जिस किसी देव में भी वीतरागता, सर्वज्ञता तथा हितोपदेशपणा, यह तीन लक्षण पाये जावे वही सच्चा आप्त है—कहा भी है "जिस ने रागद्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया। सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया। बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो। भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित उसी में लीन रहो।"

अब सच्चे गुरु का लक्षण कहते हैं

पानी पीवे छान के और गुरु करे पहिचान के ऐसी लोक में कहावत भी है :—

विषया शावशात्तीतो, निरारेभ्यो परिस्नहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः, तपस्वी सप्रशस्यते ।।

अर्थः- जिन्होंने पांचों इंद्रियों और उनकी विषय वासनाओं को और छठे मन को और छह प्रकार के आरंभ तथा चौबीस प्रकार के अंतरंग-बहिरंग परिग्रहों को कतई छोड़ दिया है और निरन्तर ज्ञानध्यान और तप ही में अपनी आत्मा को लगाते हैं, कभी भी विकथा नहीं करते, वोही निर्ग्रन्थ कहिये, नग्न वीतराग कहिये, रागद्वेषादि करके रहित साधु (गुरु) प्रशंसा करने योग्य है श्री गुरु उपदेश देते है 'यह इंद्रिय संबंधी सुख विनाशीक है'—

सपरंबाधा सहियं विच्छिण्णंबंध कारण विषयम् ।
जंइंदिये हिलद्धं तं सोखं दुक्खेयेव नहा ।।

अर्थ :- इन्द्रिय सम्बन्धी सुख पराधीन है, बाधा सहित है, विनाशीक हैं, बंध का कारण है और विषम है। इस प्रकार इसे सुख नहीं बल्कि दुःख ही कहना, समझना चाहिये। और भी कहते हैं :—

प्रति क्षणमयं जनो नियत मुग्र दुःखा तुरः ।
क्षुधादि भिर मिश्र यंस्त दुप शान्त येऽन्नादिकम् ।
तदेव मनुत सुखम् भ्रमवशाद्य देवा सुखैः ।
समुल्लसतिक ज्झा कारु जिय था शिरिवस्वेदनम् ।

अर्थ :- जिस प्रकार खाज का रोगी मनुष्य अग्नि से खाज को सेकने मे सुख मानता है किन्तु अग्नि का सेकना दुःख ही का कारण है। उसी प्रकार यह संसारी जीव जब क्षुधा, तृषा और पांचों इन्द्रियों से पीड़ित होता है तो उसी शांति के लिए यथा योग्य सामग्री का आश्रय लेता है। उस समय कुछ शांति मिलती है, पश्चात फिर दुःख स्वरूप है। इस लिए उसका भ्रम है "**यत्र भोगास्तत्र रोगाः**" यह एक सामान्य नियम है जहां भोग है वहां रोग है और भी कहते है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता,
स्तपोनतप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता,
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

अर्थ :- विषयों को हम न भोग पाये परन्तु विषयों ने हमारा बीचमें ही भुगतान कर दिया। हम तप को न तप पाये मगर तप ही ने हमें तपा डाला। काल व्यतीत न हुआ मगर हमारी उमर खतम हो गई। तृष्णा पुरानी न हुई पर हम (बुड्ढे) हो गये। मनुजी भी मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में कहते हैं।

इंद्रियाणां विचरतां विषयेष्व पहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद विद्वान यन्तेव वाजिनाम्॥

अर्थः—जैसे सारथी रथ के घोड़ों को अपने स्वाधीन रंखता है, वैसे ही विद्वान पुरुष को अपने २ विषयों में दौड़ने वाली इन्द्रियों को यत्न पूर्वक अपने वश में रखना चाहिए।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्य संशयम् ।
सन्नियम्य तुतान्येव ततः सिद्धि नियच्छति ।।

इन्द्रियों के विषय में आशक्त होने से मनुष्य निःसन्देह दुःखित होता है परन्तु उनको स्वाधीन रखने से ही सिद्धि होती है ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भय एवाभिवर्धते ।।

विषयों के भोगने से काम की शान्ति नहीं होती है प्रत्युत जैसे घी की आहुति से अग्नि विशेष प्रज्वलित होती है वैसे ही काम की वृद्धि ही होती है ।

यश्चैतान् प्राप्नुयात सवनिश्चैयतान्केवलांस्त्यजेस ।
प्रापणात् सर्वकामानां परि त्यागो विशिष्यते ।।

जो मनुष्य सर्व भोगों को प्राप्त करता है और जो सर्व भोगों को त्याग करता है, इनमें त्याग करने वाला पुरुष ही श्रेष्ठ है ।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसिच ।
न विप्र दुष्ट भावस्य सिद्धि गच्छन्ति कर्हिचित् ।।

वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तपस्या, इनमें से दुष्टाशय विषयी मनुष्य को कुछ भी सिद्धि नहीं होती ।

श्रुत्वास्पृस्ट्वा चदृष्टाच भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वास विज्ञेयो जितेन्द्रियः ।।

जो मनुष्य सुनने, स्पर्श करने, देखने, खाने और सूंघने से न प्रसन्न होता है और न अप्रसन्न होता है वही सच्चा जितेन्द्रिय है।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
ते नाम्य क्षरति प्रज्ञादते पाहादि वोदकम्॥

छिद्रवाले पात्र से जैसे पानी निकल जाता है वैसे ही एक भी इन्द्रिय के स्वतंत्र हो जाने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि सच्चा योगी (गुरु) वही है जो अपनी इन्द्रियों को और मन को वश में रखता है। इन्द्रियों के आधीन मनुष्य किसी भी प्रकार से अपना कल्याण नहीं कर सकता है।

भुञ्जंता महुरा विवाग विरसा किं पाग तुल्लाइमे

भोगने के समय मधुर और विपाक में विरस किंपाक फल के समान यह विषय विष हैं। जैसे किंपाक के फल सुगंधीदार नेत्रों को आनन्द देनेवाले और स्वाद में मधुर होते हैं, परन्तु खाने से प्राणों का नाश करते हैं, ऐसे ही विषय सुख भी पहिले तो रमणीक मालूम होते हैं परन्तु पीछे से अनिर्वचनीय दुःख देते हैं। ऐसा जानकर इन विषयों को त्यागना ही श्रेष्ठ है।

अब मन के विषय में कुछ लिखते हैं।

॥ आत्म सुख ॥

यदि मन हृदय में स्थिर हो जाय तो "मैं" अहंकर्तापना जो सर्व विचारों का मूल है, धीरे-धीरे नष्ट हो जाय।

मैं शब्द का अर्थ है निरन्तर, आत्मा में ऐसा विचार रखना।

छन्द

मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरो धन गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपको नाशमान।
रागादि प्रकट ये दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन।
शुभ अशुभ बंध के फल मंझार, रति अरति करै निज पद बिसार
आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखे आपको कष्ट दान।
रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिव रूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीत जुत कछुक ज्ञान, सो सुखदायक अज्ञान जान।

ऐसी भावना अदृश हो जाय और सदा विद्यमान एक आत्मा मात्र ही प्रकाशमान हो जाय। जिस दशा में 'अहं' विचार का लेश भी नहीं उसे स्वरूपस्थिति कहते हैं वास्तव में वही मौन कहलाता है। मौन की इस दशा का दूसरा नाम ज्ञान दृष्टि है उसका अर्थ है आत्मा स्वरूप में मन का लय होना जो सुख कहलाता है यह आत्म स्वरूप ही है। सुख एवं आत्म स्वरूप अलग नहीं हैं। आत्म स्वरूप ही एक मात्र कर्मों की निर्जरा का कारण है। वहाँ उस समय आत्मा अबंध है। सांसारिक चीजों में से किसी एक में हम जो सुख मानते हैं वह सच्चा सुख नहीं है। अपने अविवेक पूर्ण विचार के कारण ही हम इन चीजों में सुख मान बैठे हैं। मन जब बहिर्गामी होता है तब वह दुःख का अनुभव करता है। शुभ मन और अशुभ मन इस प्रकार के दो मन नहीं है। मन एक ही है सिर्फ वासनायें ही शुभ और अशुभ दो प्रकार की

होती है। शुभ वासनायुक्त मन शुभ और अशुभ वासनायुक्त मन अशुभ कहलाता है। दूसरे लोग चाहे कितने ही बुरे मालूम होते हों उनका तिरस्कार मत करो। मन को सांसारिक विषयों में अधिक मत बहाओ। यदि अहंकार जाग गया तो उसके साथ ही सब कुछ जाग उठता है। यदि अहंकार (मैं) का नाश हो जाय तो सब कुछ विलीन हो जाय। हमारा बर्ताव अन्य से जितना अधिकाधिक विनम्र होगा, उतना ही अधिकाधिक हमारा श्रेय होगा। मन वश में आ जाय तो फिर हम चाहें कहीं भी रह सकते हैं। सारे व्रत, संयमशील उपासनायें एक मन को ही वश में करने के लिये साधन हैं।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।

बस मन यही जगत है। मन नहीं तो जगत नहीं। संसार को किसने जीता? किसने मन को जीता? मन विकारी है। इसका कार्य संकल्प विकल्प करना है। चेतन अचेतन परिग्रह में ममत्व भाव रखना कि ये मेरे हैं, मैं इनका स्वामी हूं उसे संकल्प कहते हैं। तथा मैं सुखी दुःखी, ऐसा हर्ष विषाद रूप परिणाम रखना विकल्प है। यह जीव जिस पदार्थ को ग्रहण करता है स्वयं भी तदाकार बन जाता है। यह राग के साथ ही चलता है। सारे राग अनर्थों की उत्पत्ति राग से ही होती है। राग (प्रीति) न हो तो यह मन प्रपंचों की तरफ न जाय। किसी भी विषय में गुण और सौंदर्य देखकर मन उसमें राग करता है,

इसी से मन की उस विषय में प्रवृत्ति होती है। परन्तु जिस विषय में इसे दुःख और दोष दीखता है, उससे इसका भी द्वेष हो जाता है। फिर यह मन उसमें प्रवृत्ति नहीं करता। यदि भूल से उसमें प्रवृत्ति हो भी जाती है, तो उसमें अवगुण देख कर द्वेष से तत्काल लौट आता है। वास्तव में द्वेष वाले विषय में इसकी प्रवृत्ति राग से होती है, साधारणतया यही मन का स्वभाव और स्वरूप है।

मन की चेतना को बढ़ाने वाले कारणों को छुटाना चाहिये।

(१) व्याधि–शारीरिक रोग नहीं लगने देना।
(२) स्त्यान–साधना से लाभ देख कर भी इस मार्ग का अवलम्बन न कर सकना।
(३) संशय–मन का संदेह न मिटना।
(४) प्रमाद–लापरवाही आलस्य न करना।
(५) आलस्य– सुस्त मन रहना।
(६) अविरत–संयमरहित-प्रवृत्ति। किसी प्रकार कायम नियम न करना।
(७) भ्रांतिदर्शन–अपने मिथ्या ज्ञान को कुशल समझना।
(८) अलब्धभूमिकत्व–किसी लक्ष्य तक पहुंच न सकना।
(९) अनवस्थित चितत्व–किसी भी केन्द्र पर चित्त का न टिकना और उसका ढल जाना।
(१०) दुःख–मानसिक क्लेश का होना।
(११) दौर्मनस्य–किसी इच्छा के पूर्ण न होने पर चित्त में क्षोभ का रहना।

(१२) अङ्गमेजयत्व—अङ्ग-उपाङ्गों का हिलना डुलना आसनार्थ न होना।

(१४) श्वास प्रश्वास— प्राण की गति का अव्यवस्थित रूप से चलना।

(१४) प्रतिपक्ष भावना—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अज्ञान ईर्षा, द्वेष, राग आदि की प्रवृत्तियां चंचल मन में उसी प्रकार लगातार उठती रहती है जिस प्रकार सरोवर में पत्थर फेंकने ने लहरों का चक्र उठा करता है। लेकिन घबड़ाना नहीं चाहिए। अनुभव करके परेशानी को जीतना चाहिये। मन पर नियन्त्रण विचार को ठहराने से और उस पर संतोष परीषह सहन करते हुए एकाग्रमना में लीन होने से आत्मा को परम शान्ति मिलेगी और उसका स्वाद आवेगा। अर्थात् आत्म दर्शन की प्राप्ति होगी। निश्चय से "जैसा खाय अन्न, वैसा होय मन। जैसा पीवे पानी, तैसी बोले बानी॥

भावार्थ—आहार की शुद्धि से मनकी शुद्धि प्राप्त होती है। हमारे शरीर में पांच कोष माने हैं—(१) अन्नमय कोष (२) मनोमय कोष (३) प्राणमय कोष (४) विज्ञानमय कोष (५) आनन्दमय कोष—अन्नका प्रभाव मन पर तत्काल पड़ता है। इस लिए अगर हम चञ्चल और उद्धत मन की दौड़ से बचना चाहते हैं तो हमें सबसे पहिले अपने भोजन पर नियंत्रण और संयम तथा मर्यादापूर्वक शुद्ध पदार्थों को, जो कि अभक्ष्य न हों, रसना (जीभ के स्वाद को) निग्रह करते हुए तथा ज्यादा मसालों से युक्त न हों तथा गरिष्ठ उत्तेजना पैदा करने वाले पदार्थों का सेवन करने से बचने का अभ्यास डालना चाहिए

क्योंकि कारण मिलाये बिना कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती है और इसी क्रिया से ब्रह्मचर्य व्रत की भी सफलता होती है। इस प्रकार देव और गुरु का लक्षण कहा—

अब सत्यार्थ आगम कहिये शास्त्र का लक्षण कहते हैं

आप्तो यज्ञमनुल्लघ्यमदृष्टेष्ट विरोधकम् ।
तत्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथ घट्टनम् ॥

(रत्नकरंड श्रावकाचार)

अर्थ—आगम शास्त्र उसे कहते हैं जो सर्वज्ञ भगवान वीतराग के मुख से कहा गया हो और किसी वादी प्रतिवादी के द्वारा उल्लंघन (खंडन) नहीं किया गया हो और प्रत्यक्ष अनुमान, प्रमाण करके विरोध न आवे तत्व का जैसा स्वरूप यथार्थ हो वैसा उपदेश करने वाला हो और सार्वजनिक हित रूप होय, कुमार्ग जो मिथ्या मार्ग का निराकरण करे, ऐसी छह बातें जिसमें पाई जावें, वही शास्त्र है। जिसमें शुरू से आखीर तक कहीं भी हिंसा में धर्म न बतलाया गया हो, धर्म का मूल, दया का पालन का ही उपदेश हो, सच्चे देव सच्चे गुरु की श्रद्धा व भक्ति करना ही सम्यकत्व है यही मोक्ष पद प्राप्त करने के बीज हैं।

सामायिक करने की विधि (संध्यावन्दन)

प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त यानी सूर्योदय से आधा घन्टा पहले उठकर गृहस्थ (यदि स्त्री सहवास से अशुद्ध हो तो कटि स्नान)

हाथ मुंह धोकर, शुद्ध कपड़े पहन कर, या शौचदि क्रिया से, सम्पूर्ण स्नानादि क्रिया से निवृत होकर घरके किसी एकान्त स्थान में, अथवा देव स्थान मंदिर में पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके कुशा या चटाई, काष्ठ या पत्थर के आसन पर पद्मासन या सुखासन या खड्गासन विराजमान होवे। पद्मासन उसको कहते हैं जो अपने प्रथम दाहिनी जंघा पर बांये पैर को रखे और दाहिने पैर को बांई जंघा पर रखे और बीच गुल्फ में नीचे बांये हाथ की हथेली और उसके ऊपर दाहिने हाथ की हथेली रखकर, नासिका दृष्टि सीना तानकर खुली आंखों द्वारा, प्रसन्न चित होकर बैठे, इसको पद्मासन कहते हैं। और बांई जांघ पर सिर्फ दाहिने पैर को रखना और पालथी रूप बैठना इसको अर्ध पद्मासन कहते हैं। और दोनों पैरों को जांघ के नीचे रखकर, पालथी लगाकर बैठना, इसको सुखासन कहते हैं। और अगर बीमार हो किसी अंग में वेदना तकलीफ हो तो लेटे हुये चाहे जैसे बैठे हुये सामायिक कर सकता है। यहां तो सामायिक माने आत्मचिंतन अथवा ध्यान भाव शुद्धि जोड़ने का है।

अगर पेट में दर्द होवे तो मुर्दा आसन, मुर्दा के माफिक चित्त लेटकर हाथ पांव पसार कर करे। दर्द तुरन्त दूर हो जायगा और खड्गासन उसको कहते हैं जो जमीन पर अपने दोनों पैरों के बीच चार अंगुल का फासला करके खड़ा होवे और भुजाओं को लटकादे और नासिका दृष्टि सीना तानकर नेत्र बंद करे या खुले रखे ध्यान सामायिक करे। यह क्रिया कंम से कम ४८ मिनट, ज्यादा से ज्यादा सवादो घंटे सबेरेशाम करनी

चाहिये। इसी प्रकार से श्री कृष्ण चन्द्र नारायण ने भी गीता में कहा है। अध्याय ६ में श्लोक ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्न चलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥
प्रशान्तात्मा विगत भीब्रह्मचारि व्रते स्थित।
मनःसंयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥१३॥
युँजन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः।
शांति निर्वाण परमांमतसंस्था मधिगच्छति ॥१५॥

भावार्थः—शरीर मस्तक और ग्रीवा को एक दम निश्चल करके, गर्दन अचल स्थिर होता हुआ नासिका के अग्र भाग पर है। दृष्टि जिसकी किसी दिशा को भी नहीं देखता हुआ प्रशांतात्मा उपद्रव रहित ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित, मन और इन्द्रियों को स्थिर रखने वाला योगी शांति मय निर्वाण जैसे उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त होता है। अर्थात् ध्यान करने वाला इस संसार समुद्र से पार होने वाले आत्माओं को ऐसा ही परम वीतराग मुद्रा का अवलम्बन करना चाहिये।

महर्षि पातांजलि भी कहते हैं योग दर्शन के प्रथम पाद में

"वीतराग विषयं वा चितम्"

वीतराग पुरुष, जिसके चित्त की वृत्तिया स्थिर हो जाती हैं। ज्ञानी महात्मा पुरुष तो वीतराग होकर ही महात्मा बने हैं। तीव्र वैराग और दैवी सम्पदा तो महात्मा में उसके साधन मात्र से आ जाते हैं। गीता के १६ वें अध्याय के प्रथम

से तीसरे ३ श्लोकों में कहा गया है पूर्ण वीतराग अवस्था प्राप्ति पर तो मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह ही क्या है। इस वीतराग का बड़ा अचिन्त्य महात्म है। जो योगी ध्यान, ज्ञान, कर्म, योग के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं वह तो धन्य हैं। लेकिन जो मूढ़ ऐसे अज्ञानी हैं, जो कुछ नहीं जानते हैं, वे भी उन ज्ञानियों के पास जाकर उनकी बात सुनकर उनके अनुसार साधन करने पर वो श्रवण पारायण पुरुष भी इस जन्म मृत्यु रूपी संसार सागर से पार हो जाते हैं। गीता के अध्याय १३ श्लोक २५ वें में कहा है :—

अन्येत्वेवम जानन्तःश्रुत्वान्येभ्यः उपासते।
तेऽपि चानितरन्त्येव, मृत्युँ श्रुति परायणाः ॥२५॥

पूर्ण ज्ञानियों का अर्थात् मुनियों का ध्यान नग्न अवस्था में ही श्रेयस्कर होता है। क्योंकि वह ब्रह्म स्वरूप है। जिसका वर्णन चन्द्रकान्त वेदान्त का मुख्य ग्रन्थ, प्रथम भाग, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बंबई में पन्ना ४८ में लिखते हैं। (इच्छाराम सूर्यराम देशाई कृत सं० २००१ में छपा)

चिंता शून्य मदैन्य भैक्ष्य मशनं पानं सरि द्वारिषु।
स्वातन्त्रेण निरंकु शास्थितिर भो निद्राश्मशाने बने ॥
रस्त्रं क्षालन शोषणादि रहितं दिंक चास्ति शय्यामही।
संचारोनिगमान्त वीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥१॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष चिन्ता रहित और उदारता वाली भिक्षा का भोजन करते हैं। नदी का जल पान करते हैं स्वतन्त्रता से

निरंकुश होकर निर्भय रीति से जीवन व्यतीत करते हैं। श्मशान में अथवा वन में निद्रा लेते हैं। जिसको धोना भी न पड़े और सुखाना भी न पड़े ऐसे दिगम्बर दिशाओं रूपी वस्त्रों को पहनते हैं। पृथ्वी पर शयन करते हैं। उपनिषद रूप गलियों में फिरा करते हैं, और परब्रह्म के साथ क्रीड़ा करते हैं।

और मनुस्मृतिः अध्याय ६ श्लोक ३३ में नग्न होकर तप करने को कहा है—

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षा स्वभावकाशिक ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमने वर्धस्तप ॥२३॥

अर्थः—अपने तप को बढ़ाने के लिये इच्छा करने वाला वानप्रस्थ द्विज गरमी में पंचाग्नि तप करे, वर्षा में वर्षा के स्थान में नग्न होकर तप करे ॥२३॥

यह सब कायक्लेश तप में गर्भित हैं इससे शरीर का ममत्व घटता है। अखंड अविनाशी आत्मा का दिग्दर्शन होता है। संसार में वीतरागता ही मुक्ति का द्वार है। और गीता में भी अध्याय ५ में—१४, १५, १६वें श्लोक में कहा है।

न कृतृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेना वृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥
ज्ञानेम तुतद ज्ञानं येषां न शित मात्मनः ॥१६॥
तेषां आदित्य वज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं ॥१५॥

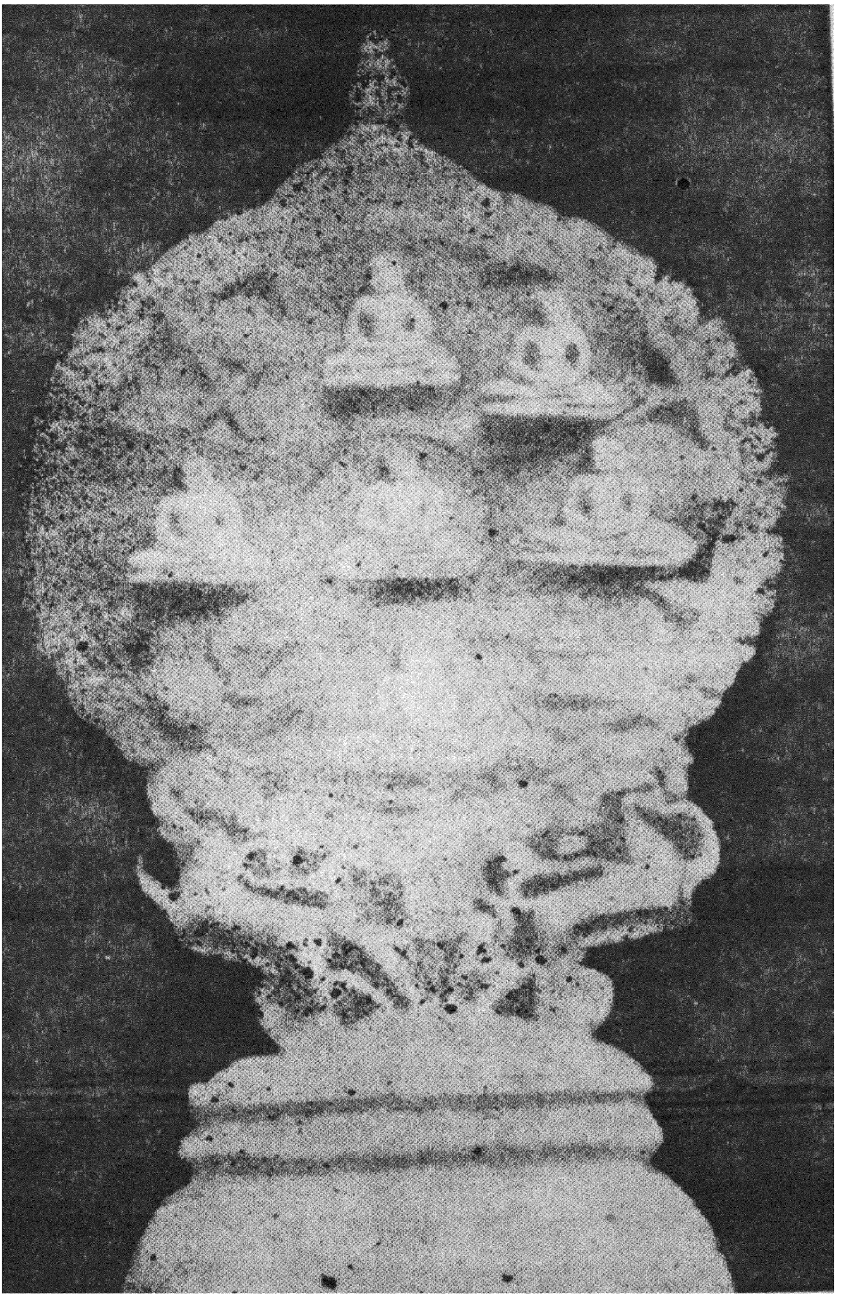

नवदेवता :—

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनचैत्य

भावार्थ:—श्री कृष्ण चन्द्र गीता में मुमुक्षों को संबोधन करते हैं कि मेरी आत्मा में कर्तत्व पना नहीं है और न मेरे परमार्थ दृष्टि से किसी कर्म से सम्बन्ध है। और सुख सुःख भोगने का जो कर्म का फल है, वह भी परमार्थ दृष्टि से मुझमें नहीं है। इसलिये संसार की रचना अनादि व स्वभाव से है और रहेगी। फिर भी मुमुक्षुओं विद्वान तथा सन्यासी त्यागियों के लिये स्पष्ट करते हैं कि कोई मनुष्य किसी को पाप नहीं दे सकता है। किन्तु अज्ञान से जिसका आत्मा मूढ़ हो गया है, वह अज्ञान के कारण कभी पाप उत्पन्न करता है, कभी पुण्य उत्पन्न करता है और स्वयं सुख-दुःख भोगता है। फिर भी सच्चे ज्ञान के द्वारा जिसने अपने अज्ञान को समूल नाश कर दिया है, उनका ज्ञान सूर्य के समान स्वपर समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला ज्ञान होगा और वह स्वयं पाप-पुण्य से विमुक्त होकर मोक्षगामी होगा।

मनुष्य जीवन का फल सुख प्राप्त करना है और सुख बिना शांति के नहीं मिलता। वैसे तो सुख के लिये निरन्तर भौतिक द्रव्यों को ही साधन समझकर उनको एकत्रित करने का ही प्रयत्न करता रहता है। पर अन्त में उसे फल शून्य रूप में ही मिलता है। इसीलिये बहुत खोजने के बाद भारतवर्ष के महापुरुषों ने धर्म को ही सुख का मूल माना है। यों तो धर्म प्राप्ति के भिन्न-भिन्न अनेकों रास्ते कारण माने गये हैं—जैसे भगवान की पूजा, गुरु की उपासना, व्रताचरण, श्रमणों की वैयावृत्य, शास्त्र—उपदेश श्रवण, तीर्थ यात्रा, दान, तप, शील, संयम, दया पालना व संध्या वंदन, जिसको सामायिक कहते हैं, आदि। परन्तु सर्व मतानुयायियों ने इनमें से संध्या-

को ही परम श्रेष्ठ कारण माना है। क्योंकि इसमें किसी प्रकार का आरम्भ परिग्रह न होने से साक्षात् मोक्ष का कारण है। गृहस्थों को नियम से दोबार व व्रती श्रावकों तथा सन्यासियों, व साधुओं को तीन बार, तीनों कालों में, प्रातः, मध्यान्य, सायंकाल में अवश्य देव वंदना करनी चाहिये। अस्तु देव वंदना का ही दूसरा नाम सामायिक है। इसी आशय को लेकर जैनाचार्यों मैं सामायिक करने के लिये अधिक जोर दिया है। स्वामी समंतभद्राचार्य ने तो सामायिक करते समय कपड़े पहरे हुए गृहस्थ को भी मुनि की उपमा दी है। सामायिक का यथार्थ फल धर्म प्राप्ति अर्थात् आत्म शाँति है। भावों की तुलना करते हुए आचार्यों ने सामायिक को छह कर्मों में विभक्त कर दिया है।

१- **प्रतिक्रमण**— भगवान के सामने किये हुए दोषों को स्मरण करके आलोचना करता हूं। अर्थात् पश्चाताप करता हूं।

२. **प्रत्याख्यान**—ये सब पाप दोष मैंने प्रमाद (आलस्य) के वश किये। सो मैं निन्दा करता हूं, अब नही करूँगा। प्रार्थना करता हूं, ये सब मिथ्या होवें।

३. **सामायिक**—समस्त जीवों के प्रति और उत्तम, मध्यम समस्त पदार्थों में रागद्वेष छोड़कर समस्त जीवों से अपने किये हुए पापों के अपराधों की क्षमा मांगना सबसे समताभाव धारण करना।

४. **स्तवन**—२४ महाराज की स्तुति, गुणानुवाद करना नमस्कार करना।

(५) **वंदना** -श्री महावीर स्वामी की बार-बार प्रशंसा पूर्वक गुणानुवाद गाकर नमस्कार करना।

(६) **कायोत्सर्ग**—पहिले की तरह खड़े होंकर शरीर से ममता छोड़कर माला फेरना, ध्यान करना।

अष्टांग—नमस्कार का स्वरूप दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनों नितम्ब, छाती, हृदय, मस्तक को जमीन में लम्बे लेटकर या गऊआसन बैठकर, देव-शास्त्र गुरु को नमस्कार करना।

सिर नितम्ब उर पीठ कर, जुगल जुगल पद टेक
आठ अङ्ग ये तन बसे और उपांग अनेक ॥

प्रतिक्रमण के ८ भेद

१. **प्रणिक्रमण**—पूर्व कृत दोषों के निराकरण को कहते हैं।

२. **प्रतिसरण**—सम्यक्त आदि गुणों से प्रेरणा करने को कहते हैं।

३. **परिहार**—मिथ्यात्व और रागद्वेषादि दोषों का निवारण करना।

४. **धारण**—नमोकारादि मन्त्रों के तथा अन्य प्रतिमा आदि वाह्य द्रव्यों के द्वारा चित को स्थिर करना, सो धारण है।

५. **निवृत्ती**—पंच इन्द्रिय विषय के भोगों से मन को रोकना।

६- **निन्दा**—अपने आत्मा को साक्षी करके स्वकीय दोषों को प्रगट करके उनकी निन्दा करना।

७. **गर्हा**—गुरु के समक्ष अपने दोषों को प्रगट करना और उस पर लज्जित होना।

८. **शुद्धि**—दोष होने पर उनका प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना।

इस प्रकार ८ भेद हैं। शुभोयोग हैं। अशुभोयोग की अपेक्षा से इनको अमृत कुम्भ कहते हैं।

सामायिक के ५ अतिचार :—

पंचाऽपि मलानुज्झेदनु पस्थापनंस्मृतेः।
कायवाङ् मनसा दुष्ट प्रणि धान्यान्यनादरम् ॥

(सागार धर्मामृत अ० ५ श्लोक ३३)

अर्थ—इस सामायिक शिक्षावृत के ५ अतिचार छोड़ने चाहियें, जैसे—

१. **स्मृत्युनुपस्थापन**—स्मरण नहीं रखना, चित्त की एकाग्रता का नहीं होना। मैं सामायिक करूँ या नहीं करूँ अथवा मैंने सामायिक की है, अथवा नहीं, इस प्रकार से विकल्प करना। जब प्रबल आलस्य होता है तब यह अतिचार का दोष लगता है। मोक्ष मार्ग में जितने अनुष्ठान हैं, उनमें स्मरण रखना सबसे पहिले मुख्य है। बिना स्मरण के कोई क्रिया फलीभूत नहीं होती है।

२. **कायदुःप्रणिधान**—कायकी पापरूप प्रवृत्ति को नहीं रोकना। हाथ-पैर आदि शरीर के अवयवों को निश्चल नही रखना, अथवा पाप रूप संसारी क्रिया में लगना।

३. **वाग्दुःप्रणिधान**—वर्णों का उच्चारण स्पष्ट रूप से नहीं करना। गलती पढ़ना। अर्थ नहीं समझना। पाठ पढ़ने में बहुत जल्दी करना। चपलता, इत्यादि।

४. **मनोदुःप्रणिधान**—क्रोध, लोभ, द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान आदि उत्पन्न होना। किसी कार्य के करने की शीघ्रता करना, अथवा क्रोधादि आवेश में आकर बहुत देर तक सामायिक करना, परन्तु सामायिक में चित्त न लगाकर सामयिक के बहाने छुप कर बैठना, इधर उधर घूमना।

५. **अनादर**—सामायिक करने में उत्साह नहीं करना। ठीक समय पर सामायिक नहीं करना, अथवा जिस-तिस प्रकार समय पूरा करना। सामायिक पूरा करते ही संसारी कार्यों में सिद्धता पूर्वक दत्तचित्त हो जाना। मानो झगड़े से छूटे, ऐसा निरादर करना। इस प्रकार पद्मासन बैठे हुये अपने किये हुये दोषों की आलोचना करके मैं इतने समय तक सामायिक करूँगा, वक्त का नियम करे और स्थान का नियम करे। और जो वस्त्र इत्यादि अपने पास उस समय हो, उसका नियम करे, इसके अतिरिक्त मेरे संसार सम्बन्धी सभी वस्तुओं का और परिग्रह का त्याग है, और इतने समय के अन्दर किसी प्रकार का विघ्न आजावेगा, जिसको उपसर्ग कहते हैं—देव कृत, मनुष्य कृत, पशु-पक्षी, इत्यादि, पानी बरसने लग जावे, अग्नि लग जावे, नदी की बाढ़ आ जावे, इत्यादि किसी भी प्रकार का विघ्न आ जावे, तो समाधि पूर्वक भगवान का ध्यान करता हुआ, मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ, परीषह याने दुःख को सहे, अपने स्थान

आसन को त्यागे नहीं, समता रूपी रस का पान करे, ऐसे समय का प्राण छोड़ा हुआ जीव को उत्कृष्ट देव, स्वर्ग लोक की प्राप्ती होती है। इसको समाधिमरण कहते हैं। इसमें आत्मघात का पाप नहीं लगता है क्रोध, मान, माया, लोभ के वश होकर विषयों को सेवन करता हुआ, अधर्म प्रवृत्ति में जैसे रेल से कटके, व नदी, कुआँ, तालाब के जल में डूबे, जलती हुई अग्नि में गिर के, जहर को खाकर, व शस्त्र इत्यादि से व गोली खाकर, जान से मरना, जिसमें होता हैं, उसमें आत्म-घात का पाप लगता है और मरके नरक भोगना पड़ता है। ऐसा जान कर अब प्रथम सामायिक पाठ जो कंठस्थ हो उसको पढ़े और फिर मन्त्रों का जाप्य देवे। अगर कोई भी सामायिक पाठ भावना स्तुति इत्यादि कंठ नही होवे, तो आगे चौकी रखकर पुस्तक रखकर पढ़े अथवा हाथ में पुस्तक लेकर पड़े बाद में मौनस्थ होकर माला फेरे—

जाप्य मंत्र

प्रथम णमोकार मन्त्र है उसको तो १०८ बार जरूर ही जपना चाहिये।

१. ३५ अक्षर का

णमो अरिहंताणं, णमोसिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए, सव्व साहूणं ॥१॥

२. सोलह अक्षर का

अरहंतसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

३. छह अक्षर का

अरहंतसिद्ध, ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

४. पांच अक्षर का

असिआउसा, णमोसिद्धाणं ।

५. चार अक्षर का

अरहंत

६. दो अक्षर का

सिद्ध, ओं ह्री, सोहं ।

७. एक अक्षर का

ॐ ।

इस प्रकार जितना समय अवकाश हो उसके अनुसार स्थिरता पूर्वक शुद्ध उच्चारण करे। इनकी श्रद्धा पूर्वक जो जाप्य देता है वह संसारिक सुख व परम्पराय मोक्ष को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त जैन धर्म में मन्त्र विधान शास्त्र का बड़ा ही विपुल कोष है। अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिनसे जो चाहो शुभ कार्य, सांसारिक सुख सम्पत्ति लाभ, निरोगता, मान सम्मान, विजय प्राप्ती, इत्यादि विधिपूर्वक, ध्यान-अध्ययन करने से, निश्चय से फल की प्राप्ति होती है। धर्म और उसकी शक्ति कहीं चली नहीं गई है। आज हमारा खान-पान, रीत-रिवाज, आचार-विचार, देव श्रद्धा, गुरु-भक्ति, विनय, इत्यादि गुणों का हममें ह्रास हो गया है। इसी से

हम क्या सारा संसार दुःखी है। जिसका इष्ट भ्रष्ट है, उसका सब भ्रष्ट है। आज हम मुख्य सुख का उपाय-धर्म साधन को प्रथम भूल कर, उठ सवेरे से व्यापार कर्म यानी रोजगार में ही जुट जाते हैं। फिर बताओ "बोओ पेड़ बबूल के आम कहां से खाओ" तकदीर का या भगवान ने ऐसा क्या किया जो दोष देते हैं। लक्ष्मी तो पुण्य की चेरी (दासी) है। और पुन्य बिना धर्म के नहीं होता। इसलिए सबसे प्रथम सामायिक रोज अवश्य करना चाहिए। इससे चित्त को बड़ी ही शांति और लाभ की प्राप्ति होती है।

प्रार्थना 'आतमराम'

आतमराम जय आतमराम अजर अमर है आतमराम।
पतित पावन आतमराम ।।टेर।।
बोलो बन्धुओं बड़े प्रेम से आतमराम जय आतमराम।
है यह एक, अनेकों नाम, मन मंदिर में है विश्राम ।।
सोऽहं शिव ब्रह्म है नाम, इसको कहते प्रेमाभिराम।
नाम रूप का भेद भूल जा, सदा सर्वदा आतमराम ।।
निर्मल शुद्ध बुद्धि से देखो, पा जावोगे आतमराम बोलो ।।१।।

तीरथ मय हैं चारों धाम, इसमें गुञ्जित आठों याम।
ब्रह्मा विष्णु है शंकर नाम, कोई कहता है राधेश्याम ।।
पृथ्वी के कन कन में देखो, व्याप रहा है आतमराम।
सब्जी, पानी, पवन अग्नि में, झलक रहा है आतमराम बोलो।।२।।

पानी में नहीं गलता राम, नहीं आग में जलता राम।
नहीं वायु में उड़ता राम, नहीं भूख से मरता राम ।।

ध्रुव है नित्य अटल दुनियां में, शाश्वत रहना आतमराम ।
चिदानन्द चैतन्य चिन्मूरत चिन्मय चिद्रूप है आतमराम बोलो ॥३॥

इसमें सच्चा है आराम, खरच नहीं होता है दाम ।
भजलो इसको प्रातः शाम, जिससे हो जावे कल्यान ॥
अपने ही में ढूंढ निकालो, कर्म करो नित्य प्रति निष्काम ।
ध्यान लगाकर अनुभव करलो, पा जाओगे आतमराम बोलो ॥४॥

महावीर की यह निजवाणी, गौतम-बुध ने इसे बखानी ।
सब धर्मों ने निश्चय जानी, सतों ने इसको पहचानी ॥
अपने पर का भेद जानजा, मिल जावेंगे आतमराम ।
आशा भय स्नेह छोड़दे, झलक उठेंगे आतमराम बोलो ॥५॥

मीरा की वह श्याम लगन में, द्रोपदी की वह चीर हरन में ।
सीता की वह अग्नि तपन में, राजुल ने पाया गिरवन में ॥
मैना सुन्दरि ने पति सेवा में, पाया अपना आतमराम ।
सेवा के पथ पर आ जाओ, बोल उठेंगे आतमराम बोलो ॥६॥

कुन्द कुन्द की आत्ममगन में, योगीन्द्र देव की सत्य लगनमें ।
उमास्वामि की तत्व लगनमें, समंतभद्र की श्रुत चितवन में ॥
स्याद-वाद की गूंज गगन में, सप्तभंग की लहर पुलिन में ॥
सत्श्रद्धा अरुज्ञान चरन में, पाया अपना आतमराम बोलो ॥७॥

चांदनपुर थल पावापुर जल में, बना हुआ है वीर का धाम ।
एक दफे निश्चय ला करके, प्रभु दर्शन कर करो प्रणाम ॥
होंय मनोरथ पूर्ण तुम्हारे, रिद्ध सिद्ध पावो विश्राम ।
सुमति दोऊकर जोरके बंदे पाजाओगे आतमराम बोलो ॥८॥

नोट :—मथुरा आगरा से श्री महावीरजी स्टेशन है। जैपुर राज्य मे चांदनपुर गांव गम्भीर नदी के पार बड़ा मनोज्ञ स्थान है। वहां पर भगवान के बड़े-बड़े मन्दिर, धर्मशालाए, कन्या पाठशालायें, व्रती आश्रम, पुरातन जैपुर महाराजा व जैन समाज द्वारा बनवाये हैं। संसार में अनुपमतीर्थ है। महावीर स्वामी का धाम है। दूसरा धाम मोक्ष प्राप्ति स्थान गयाजी स्टेशन से गुड़ावा पावापुरी का मन्दिर, तालाब के बीच बना है। देखने और भजन का स्थान है, तीर्थ है। एक बार अवश्य दर्शन करो।

* केवल शुद्धस्वरूप का ध्यान *

।। वीतराग स्तोत्रम् ।।

मिश्रित भाषा

शिवं शुद्ध बुद्ध परं विश्वनाथ,
न देवो न बन्धुर्न कर्ता न कर्म ।
न अंगं न सगं न स्वेच्छा न कायम्,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ।।१।।

न बन्धो न मोक्षो न रागादि लोभं,
न योगं न भोगं न व्याधिं न शोकम् ।
न कोपं न मानं न माया न लोभम्,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ।।२।।

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा,
न चक्षुर्न कर्णं न वकत्रं न निद्रा ।

न स्वामी न भृत्यं न देवो न मर्त्यः,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥३॥
न जन्म न मृत्युः न मोदा न चिन्ता,
न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा ।
न स्वेद न खेदं न वर्णं न मुद्रा,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥४॥
त्रिदण्डे त्रिखण्डे हरे विश्व नाथम्,
ऋषिकेश विध्वस्त परमारि जालम् ।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि पापम्,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥५॥
न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढ़ो,
न खेदं न भेदं न मूर्ति न स्वेदः ।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥६॥
न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्,
न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः ।
न शिष्यो-गुरुर्नापि हीनं न दीनम्,
चिदान्द रूपं नमो वीतरागम् ॥७॥
ज्ञान स्वरूपं स्वयं तत्ववेदी,
न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं स्वरूपी ।
न चान्योन्यभिन्नं न परमार्थ मेकम्,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥८॥
आत्माराम गुणाकारं गुणनिधि चैतन्यरत्नाकरं ।
सर्वं भूतगमागते सुख दुखे ज्ञाते त्वया सर्वगे ॥

त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायन्ति योगीश्वराः ।
वन्दे तं हरि वंशहर्ष हृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम ॥६॥

॥ अथ परमानन्द स्त्रोत्रम् ॥

जब राग-द्वेष से निवृत्ति हुई तो आत्मा में परमानन्द का ही आह्लाद है, अपने असली स्वरूप को प्राप्त हुआ कर्म कालिमा रहित शुद्ध स्फटिक के समान । कैसा हूँ !

परमानन्द संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यान हीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अनन्त सुख सम्पन्नं ज्ञानामृत पयोधरम् ।
अनन्तवीर्य सम्पन्नं दर्शनं परमात्मनः ॥२॥

निर्विकारं निरावाधं सर्व संग विवर्जितम् ।
परमानन्द सम्पन्नं शुद्ध चैतन्य लक्षणम् ॥३॥

उत्तमास्वात्मचितास्यात्मोहचिंता च मध्यमा ।
अधमा काम चिन्तास्यात् परचिन्ता धमाधमा ॥४॥

निर्विकल्प समुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसम् ।
विवेक मंजलि कृत्वातं पिवन्ति तपस्विनः ॥५॥

सदानन्द मयं जीवं यो जानाति स पण्डितः ।
स सेवते निजात्मानं परमानन्द कारणम् ॥६॥

नलिनाच्च यथा नीरं भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ।
सोऽयमात्मा स्वभावेन देहे तिष्टति निर्मलः ॥७॥

द्रव्य कर्म मलैर्मुक्तं धाव कर्म विवर्जितम् ।
नो कर्म रहितं सिद्धं निश्चयेन चिदात्मकम् ॥८॥

आनन्दं ब्रह्माणो रूपं दिज देहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानंहीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम् ॥६॥

सद ध्यानं क्रियते भव्यो मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृष्यते शुद्धं चिच्चमत्कार लक्षणम् ॥१०॥

ये ध्यान लीना मुनयः प्रधाना ते दुःख हीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥११॥

आनन्द रूपं परमात्मतत्वं, समस्त सकल्प विकल्प मुक्तम् ।
स्वभाव लीना निवसन्ति नित्यं जानाति योगी स्वमेव तत्वं ॥२२॥

निजानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयम् ।
अनन्त सुख सम्पन्नं सर्व सङ्ग विवर्जितं ॥१३॥

लोकमात्र प्रमाणीयं निश्चये नहि संशयः ।
व्यवहारे तनुमात्रः कथितः परमेश्वरैः ॥१४॥

तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गय विभ्रमः ।
स्वस्थ चितः स्थिरी भूत्वा निर्विकल्प समाधितः ॥१५॥

स एव परमं ब्रह्म स एव जिन पुङ्गवः ।
स एव परमं तत्वं स एव परमो गुरुः ॥१६॥

स एव परमं ज्योतिः स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्वानं स एव परमात्मकः ॥१७॥

स एव सर्व कल्याणं स एव सुख भाजनम् ।
स एव शुद्ध चिदूरूपं स एव परमं शिवः ॥१८॥

स एव परमानन्द स एव सुखदायकः ।
स एत परम ज्ञानं स एव गुणसागरः ॥१६॥

परमाह्लाद सम्पन्नं राग द्वेष विवर्जितम् ।
सोहं तं देह मध्येषु यो जानाति स पण्डितः ॥२०॥
आकार रहितं शुद्धं स्वस्वरूपे व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं निर्विकारं निरंजनम् ।२१॥
तत्सदृशं निजात्मानं योजनाति स पण्डितः ।
सहजानन्द चैतन्य प्रकाशाय महीयसे ॥२२॥
पाखाणेषु यथा हेम दुग्ध मध्ये तथा घृतम् ।
तिल मध्ये यथा तैलं देह मध्ये तथा शिवः ॥२३॥
काष्ठ मध्ये यथा वह्निः शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

सर्व श्रेष्ठ मोक्ष पद प्राप्ति में सहायक महामन्त्र पंच परमेष्ठी गर्भित णमोकार मन्त्र की महिमा

पद ५

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥
मंत्र संसारसारं त्रिजगदनुपमं सर्व पापारि मन्त्रं ।
संसारोच्छेद मन्त्रं विषम विषहरं कर्म निर्मूल मन्त्रं ॥

अर्थ—संसार में सार भूत ये ही मन्त्र हैं, तीन लोक में इसकी कोई उपमा नहीं, सम्पूर्ण पाप रूपी शत्रुओं का विनाश करने वाला है, कर्म को जड़ से उखाड़ कर फेंक देने वाला है ।

मन्त्रं सिद्धि प्रदानं शिवमुखं जननं केवल ज्ञान मन्त्रं ।
मन्त्रं श्री जैन मन्त्रं जप जप जपितं जन्म निर्वाण मन्त्रं ॥

अर्थ---आत्मा के स्वरूप को प्राप्त करने वाला है, मोक्ष सुख को उत्पन्न करने वाला है, केवल ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, जन्म मरण को नाश करने वाला है। ऐसे इस जैन मन्त्र को अनेक बार जपो। स्वर्ग की सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाला है।

आकृष्टिं सुरसंपदांविदधतेमुक्ति--श्रियो वश्यतां।
उच्चाटं विपदां चतुर्गति भुवा विद्वेष मात्मैनसाम् ॥

अर्थ---स्वर्ग की सम्पत्ति को प्राप्त करने वाला है, मोक्ष रूपी लक्ष्मी को वशीभूत करने वाला है, चारों गतियों से उत्पन्न हुये दुःखों का नाश करने वाला है, आत्मा के पापों को नाश करने वाला है।

स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं।
पापात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥

अर्थ---खोटी गती के रोकने के लिए खम्भा के समान है, मोह का विनाश करने वाला है। ऐसे अक्षरमयी नमोकार मन्त्र को जोकि देवता स्वरूप है, वह हमारी रक्षा करे।

अनन्तानन्त संसार-सन्तति छेद कारणम्।
जिनराजपदाम्भोज-स्मरणं शरणं मम ॥

अर्थ--अनन्तानन्त ससार की जो परम्परा है उनके नाश करने का कारण जिनराज के चरणकमल का स्मरण ही मेरे शरण है और हो, हे भगवन्--

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्षजिनेश्वर ॥

अर्थ—और दूसरा कोई शरण नहीं है. तुम्ही मेरे शरण हो, इसलिये दया भाव से हे जिनेश्वर मेरी रक्षा करो।

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविश्यति ॥
जिने भक्ति जिने भक्ति जिने भक्तिं दिने दिने।
सदामेस्तु सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु भवेभवे ॥

अर्थ—इन तीनों लोकों में वीतराग भगवान से उत्कृष्ट न तो कोई देव रक्षक हुआ है, न होगा। मेरी भव-भव में श्री जिनेन्द्र देव से ही भक्ति है, क्योंकि दूसरा कोई धीर बँधाने वाला है नहीं। इसलिए रोज-रोज हे प्रभु आपकी भक्ति ही श्रेयस्कर रहे।

इच्छानिरोध-तप—पाँचों इन्द्रियों की विषयवासना व मन को काबू में करके सर्व प्रकार की इच्छाओं को रोकना ही परम जप है, ध्यान है।

भजन

इच्छा दमन नहिं होय तो चारित्र से शिव गमन नहीं रे ॥ टेक
नीर तज भव पीर मिटे तो, मृगतृष्णावश जान दई रे ।
अन्न त्यागतें मुक्ति होय तो, भिक्षुक लंघन करत सही रे ॥
नाम जपे से नाथ मिलें तो, तोता निशदिन रटत यही रे ।
बिन बोले से ध्यान होय तो, बगुला बैठा मीन गही रे ॥
वस्त्र त्याग अरु वन निवास से, जो होवत साधु कहीं रे ।
तो पशु वस्त्र कभी नहीं पहरें, वन में आयु बीत गई रे ॥
काय क्लेश से कृत्य न होवे, जो इन्द्री नहीं दमन करी से ।
भूमि राज सो ताहि नमत हैं, जो पावत है मोक्ष मही रे ॥

भजन

अगर किस्मत मे ए जिनवर, तेरा दीदार हो जाता।
जमाने भर की नजरों मे, मेरा उद्धार होजाता ॥ टेक॥

अदा पाई है कुछ ऐसी, जो आशिक विश्व है तेरा।
अदा को देख कर तेरी, चकित संसार हो जाता ॥

मै भूला आप था खुद को, भरी थी वह खुदी मुझ में।
जमाना हेय दिखता है, तेरा जब ध्यान हो जाता ॥

लगाकर ध्यान जब भगवान तेरा, मैं बैठ जाता हूं।
मैं खुद ही मस्त हो जाता, तेरा जब ध्यान हो जाता ॥

भंवर में फँस रही किश्ती खिवैया है नहीं कोई।
लगाते पार नैया को, तो, मैं भी पार हो जाता ॥

इस विनती को भगवान् के सन्मुख खड़े होकर पढ़ने से अध्यात्मरस टपकने लग जाता है निश्चय सम्यक्त्व का कारणभूत है।

दौलतरामजी कृत दर्शनस्तुति

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेंद्र जयवंत नित, अरिरजरहसविहीन ॥

जय वीतराग विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृगसुख वीरजमंडित अपार ॥

जय परम शांत मुद्रा समेत, भविजन को नित अनुभूति हेत।
भवि भागनवचजोगेवशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय ॥

तुम गुण चिंतत निजपरविवेक, प्रगटै बिघटै आपद अनेक ।
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ।।

अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमातम परम पावन अनूप ।
शुभअशुभविभाव अभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमयअछीन ।।

अष्टादशदोषविमुक्त धीर, सुचतुष्टयमय राजत गँभीर ।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नवकेवललब्धिरमा धरंत ।।

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जेहैं सदीव ।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को अवर न आप टारि ।।

यह लखि निज दुखगदहरणकाज, तुमही निमित्तकारण इलाज ।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ।।

मैं भ्रम्यो अपनपो बिसरि आप अपनाये विधि फल पुण्य पाप ।
निजको परको करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ।।

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।
तनपरणति में आपो चितार, कबहू न अनुभयो स्वपदसार ।।

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश ।
पशुनारकनरसुरगतिमँझार, भव धर धर मर्यो अनंत बार ।।

अब काललब्धिबलतें दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशहाल ।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद्व, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ।।

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभो तुव चरण साथ ।
तुम गुणगणको नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव ।।

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय ।
मैं रहूं आपमें आप लीन, सो करो होउं ज्यों निजाधीन ।।

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु, हरहु मम मोहताप॥
शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयंमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतें भव नसाय॥
त्रिभुवनतिहुँ काल मँझार कोय, नहिंतुम बिननिज सुखदायहोय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधिउतारन तुम जिहाज॥

दोहा—तुम गुणगणमणि गणपति, गनत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोगसँभार॥१८॥इति॥

दर्शन का फल

जिस समय घर से शुद्ध कपड़े पहर कर, नंगे पैर भगवान के मंदिर में प्रवेश करना है, सम्मुख वीतराग मुद्रा का अवलोकन करते ही कोटि जन्म के पापों का नाश करता है।

देव दर्शन स्तोत्र

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्॥
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वंदनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम॥

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभं।
जन्म जन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति॥
दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनं।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम्॥

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टागुणाश्रयाय ।
प्रशांतरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने ।
परमात्माप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेवशरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥
जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥

जिनधर्माविनिर्मुक्तो, मा भवच्चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥
जन्म-जन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम् ।
जन्ममृत्युजरारोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ॥

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य ।
देव त्वदीयचरणांवुजवीक्षणेन ॥
अद्य त्रिलोकतिलकप्रतिभासते मे ।
संसारवारिधिरयं चुलकप्रमाणम् ॥

★

महावीराष्टक स्तोत्र

● शिखरिणी ●

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः।
समं भांति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोंतरहिताः॥
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो।
महाबीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

शब्दार्थ—(यदीये चैतन्ये) जिनके ज्ञान में (ध्रौव्य) नित्य (व्यय) नाश (जनि) उत्पाद (लसंतः) सहित (अंतरहिता) अनंत (चित् अचितः भावाः) जीव अजीवादिक पदार्थ (सम भांति) एक साथ प्रतिभासित होते हैं। (यः जगत्साक्षी) जो समस्त संसार को देखने वाले हैं (मार्ग प्रकटन परः भानुः इव) मोक्ष का मार्ग बतलाने में जो सूर्य के समान हैं (महावीर स्वामी में नयन पथगामी भवतु) ऐसे महावीर स्वामी मेरी आँखों के सामने रहो अर्थात् मुझे दर्शन देवो ॥१॥

भावार्थः—जिनके ज्ञान में उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित अनंत जीव अजीवादिक पदार्थ एक साथ दर्पण के समान झलकते हैं। जो समस्त संसार को देखने वाले हैं तथा मुक्ति का मार्ग बतलाने में सूर्य के समान हैं, ऐसे महावीर स्वामी हमें दर्शन देवें।

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पंदरहितं।
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यंतरमपि॥
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥

शब्दार्थ—(अताम्रं) लालिमा रहित (स्पंदरहितम्) टिमकार रहित (यच्चक्षुः कमल युगलम) जिनके दोनों नेत्र कमल (जनान्) मनुष्यों को (अभ्यंतरम्) आपके हृदव के हृदय के (कोपापायाम्) क्रोध रहितपने को (प्रगटयति) प्रगट करते हैं (यस्य स्फुटं मूर्तिः) जिनकी स्वच्छ मूर्ति (प्रशमितमयी) शान्ततासहित (अति विमला) बहुत पवित्र सुशोभित होती है ॥२॥

भावार्थ—जिनके लालिमा रहित और टिमकार रहित दोनों नेत्र मनुष्यों को अंतरंग की क्षमा को प्रगट करते हैं और भगवान की स्वक्छ वीतराग विकार रहित मुद्रा उनकी बाह्य क्षमा को प्रगट करती है। ऐसे महावीर स्वामी हमारी आंखों के सामने रहो।

नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं।
लसत्पादांभोजद्वयमिह यदीयं ननुभृतां॥
भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभति जलं वा स्मृयमपि।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

शब्दार्थ—(इह) इस लोक में (यदीयं) जिनके (लसत् पादाम्भोजद्वयम्) शोभायमान दोनों चरण कमल (नमत्) नमस्कार करते हुये (नाकेंद्रालि) इन्द्रों के समूह के (मुकुट मणि भा-जाल जटिलम्) मुकुटों में लगी हुई मणियों के प्रकाश समूह से व्याप्त हैं (स्मृतम् अपि) जिनका स्मरण भी (तनु-भृताम्) संसारी जीवों के लिये (भवज्ज्वाला शान्त्यै) संसार रूपी आताप को शांत करने के लिए (प्रभवति) होता है ॥३॥

भावार्थ—नमस्कार करते हूये देवेंद्रों के मुकुट को मणियों के प्रकाश पुञ्ज से जिनके चरण कमल सुशोभित हो रहे हैं और जिनका स्मरण रूपी जल सांसारिक आताप की शांति के लिये होता है। अर्थात्—जिनके स्मरण मात्र से संसारी जीवों का दुःख नष्ट हो जाता है ऐसे महावीर स्वामी हमारी आंखों के सामने रहो।

यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह।
क्षणदासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः॥
लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥

शब्दार्थ०—(इस) इस लोक में (यदर्चाभावेन) जिनकी पूजा के भाव मात्र करने से (प्रमुदितमना) आनन्दचित्त (दर्दुर) मेंडक (क्षणात्) पल भर में (गुणगणसमृद्धः) अनेक गुण सहित (सुखनिधि) सुख का सागर (स्वर्गी) देव (आसीत्) हुवा। जिनकी पूजा कर (सद्भक्ताः) सच्चे भक्त (शिव सुख समाजम्) मोक्ष सुख को भी (लभंते) प्राप्त कर लेते हैं (किमुतदा) फिर और सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त करने की तो वात ही क्या है॥४॥

भावार्थ—जिनकी पूजा के अभिप्राय से प्रसन्न चित्त होकर एक मेंढक कमल का फूल मुंह में लेकर मार्ग मैं जा रहा था। रास्ते में ही वह महाराज श्रेणिक के हाथी के पांव के नीचे आकर मर गया। वह भगवान महावीर की पूजा कर ही नहीं पाया, पर मात्र पूजा के भाव रखने से ही मर कर अनेक रिद्धियों सहित स्वर्ग में देव हुआ, तब सच्चे भक्त, हे भगवन्

आपकी पूजा कर मोक्ष प्राप्त करें इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ऐसे महावीर स्वामी हमें प्रगट हों दर्शन दें ।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो ।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः ॥
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगति-
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥५॥

शब्दार्थः— (हे नृपति वर सिद्धार्थ तनय) हे महाराज सिद्धार्थ के पुत्र (कनत्स्वर्णाभासः अपि) आपका शरीर तपाये हुये सोने के समान होने पर भी (अपगततनुः) आप शरीर रहित हो (विचित्रात्माऽपि) अनेक प्रकार होने पर भी (एकः) एक हो (अजन्मापि) जन्मरहित होने पर भी (श्रीमान्) लक्ष्मी सहित हो (विगतभवरागः) सांसारिक पदार्थों में राग रहित होने पर भी (अद्भुतगतिः) विलक्षण गति वाले हो। हे महावीर स्वामी आप हमारी आखों के सामने रहो ।

भावार्थः—हे महाराज सिद्धार्थ के पुत्र आपका शरीर तपाये हुये सोने के समान है तो भी शरीर रहित और ज्ञान के पिंड हो आप अनेक प्रकार हैं तो भी एक हैं। जन्म रहित हैं तो भी श्रीमान् हैं। सांसारिक पदार्थों में रागरूप गति के अभाव होने पर भी आप विलक्षण गति वाले हैं। ऐसे महावीर स्वामी हमें स्पष्ट दर्शन दें ।

यदीया वाग्गंगा विविधनय कल्लोलविमला ।
बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्पनयति ॥
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता ।
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

शब्दार्थः—(यदीया) जिसकी (वाग्गंगा) वचन रूपी गंगा नदी (विविध नयकल्लोल विमला) अनेक प्रकार की नयरूपी लहरों से शुद्ध है (या) जो (जगति) संसार में (बृहज्ज्ञानाम्भोभिः केवल ज्ञान रूपी जल से (जनताम्) मनुष्यों को (स्नापयति) स्नान कराती है (इदानीम् अपि) इस समय भी (एषा) यह (बुधजन मरालैः) अनेक पंडितजनरूपी हंसों से (परिचिता) सहित है।

भावार्थ—जिनकी वचनरूपी गंगा नदी नयरूपी तरंगों से शोभायमान है। और जो केवल ज्ञान रूपी जल से संसार के मनुष्यों को स्नान कराती है, तथा जिसमें अब भी अनेक पंडित रूपी हंस विद्यमान हैं। ऐसे महावीर स्वामी हमें दर्शन देवें।

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी काम सुभटः।
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः॥
स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स जिनः।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥७॥

शब्दार्थ—(अनिर्वारोद्रेकः) नहीं रुक सकने वाग्य है उद्रेक जिसका ऐसा (त्रिभुवन जयी) तीनों लोकों को जीतने वाला (काम सुभटः) काम रूपी योद्धा (येन) जिसने (निजबलात्) अपने आत्म बल से (कुमारावस्थायाम्) कुमार अवस्था में भी (स्फुरन्नित्यानन्द प्रशम पदराज्याय) प्रकाशमान नित्य आनन्द एव शांत पद रूपी राज्य प्राप्ति के लिये (विजितः) जीत लिया।

भावार्थ—नहीं रोका जा सकता है वेग जिसका और जो तीनों लोकों को जीतने वाला है ऐसे काम रूपी योद्धा को

नित्यानंदरूप महा शांतिमय राज्य प्राप्ति के लिये जिन्होंने यौवन काल में ही जीत लिया है, ऐसे महावीर स्वामी हमें दर्शन देवें।

महामोहातंकप्रशमनपराकस्मिकभिषङ्।
निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमा मंगलकरः॥
शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥

शब्दार्थ—(महामोहातक) जो महान् मोह रूपी रोग को (प्रशमनपरः) शांत करने वाले (आकस्मिक) अकस्मात् मिल जाने वाले (भिषक्) वैद्य हैं तथा जो (निरापेक्षः बंधु) स्वार्थ रहित भाई (विदित महिमा) प्रसिद्ध है महिमा जिन्हों की (मंगलकरः) और मगल करने वाले हैं (भवभयभृत्ताम्) संसार से भयभीत (साधूनाम) सज्जन पुरुषों को (शरण्यः) जो आश्रय दाता हैं। (उत्तमगुणो) जो उत्तम गुणवाले हैं॥८॥

भावार्थ—महा मोह रूपी रोग को दूर करने के लिए जो आकस्मिक वैद्य हैं, जो संसार के निःस्वार्थी बंधु हैं, जिनकी महिमा प्रसिद्ध है, जो जगत की भलाई करने वाले हैं, जो शंसार से भयभीत मुनियों के लिये आश्रयदाता हैं जो अनेक गुणों के स्वामी हैं ऐसे महावीर स्वामी हमें दर्शन दें।

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृतं।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिं॥९॥

शब्दार्थ—(भक्त्या) भक्ति पूर्वक (भागेंदुना) मुझ भागचन्द्र के द्वारा (कृतम्) बनाये गये (महावीराष्टकं स्तोत्रम्) इस

महावीर स्तोत्र को (यः पठेत्) जो पढ़ता है (च अपि श्रृणुयात्) या सुनता है (स परमां गतिं) वह उत्कृष्ट गति को अर्थात् मोक्ष को (याति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—यह महावीराष्टक स्तोत्र भक्ति पूर्वक मुझ भागचन्द्र के द्वारा बनाया गया है। इसको जो भी कोई जन भावपूर्वक पढ़ता वा सुनता है वह उत्तम गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

★

चौबीसो तीर्थंकर अवतारों के गुणानुवाद और उनके नाम सहित वंदना है।

स्वयंभू स्तोत्र भाषा

चौपाई

राजविषै जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वंभू भगवान, बंदौं आदिनाथ गुणखान॥
इंद्र छीर सागर जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन विनाशक सुख करतार, बंदौं अजित अजितपदकार॥
शुकल ध्यानकरि करमविनाशि, घाति अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुकतिपद सुख अधिकार, बंदौं संभव भवदुख टार॥
माता पश्चिम रयन मंझार, सुपने सोलह देखे सार।
भप पूछि फल सुनि हरषाय, बंदौं अभिनंदन मन लाय॥

सब कुवादवादी सरदार, जीते स्यादवादधुनिधार ।
जैनधरमपरकाशक स्वाम, सुमतिदेवपद करहुं प्रनाम ।।

गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर शोभा अधिकाय ।
बरसे रतन पंचदश मास, नमों पदमप्रभु सुख की रास ।।

इंद फनिंद नरिंद त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुस्हाल ।
द्वादश सभा ज्ञानदातार, नमों सुपारसनाथ निहार ।।

सुगुन छियालिस हैं तुम माँहि, दोष अठारह कोऊ नाहिं ।
मोह महातम नाशक दीप, नमो चन्द्रप्रभ राख समीप ।।

द्वादश विध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश ।
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान, बंदों पहुपदंत मन आन ।।

भवि सुखदाय सुरगतें आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय ।
आप समान सबनि सुख देह, बंदों शीतल धर्म सनेह ।।

समता सुधा कोपविष-नाश, द्वादशाँग बानी परकाश ।
चार संघ - आनँद - दातार, नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ।।

रतनत्रयचिरमुकुट विशाल, सोभै कंठ सुगुन मनिमाल ।
मुक्तिनार भरता भगवान वासुपूज्य बंदौं धर ध्यान ।।

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश ।
कर्मनाशि शिवसुख विलसंत, बंदौं विमलनाथ भगवंत ।।

अंतर बाहिर परिगह डारि, परम दिगम्बर व्रत को धारि ।
सर्वजीवहित-राह दिखाय, नमों अनंत वचन मनलाय ।।

सात तत्त्व पंचासतिकाय, अरथ नवों छदरब वहु भाय ।
लोक अलोक सकल परकास, बंदौं धर्मनाथ अविनाश ।।

पंचम चक्रवरति निधिभोग. कामदेव द्वादशम मनोग।
शांतिकरन सोलम जिनराय, शांतिनाथ वंदौं हरखाय ।।

बहुथुति करे हरष नहिं होय, निंदे दोष गहै नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्म स्वरूप, बंदौं कुन्थुनाथ शिवभूप ।।

द्वादशगण पूजें सुखदाय, थुति बदना करें अधिकाय।
जाकी निजथुति कबहुं न होय, बंदौं अरजिनवर-पद दोय ।।

परभव रतनत्रय-अनुराग, इह भव व्याह समय वैराग।
बालब्रह्म पूरन व्रतधार, बंदौं मल्लिनाथ जिनसार।

विन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लौकांत करै पगलाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, वंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ।।

श्रावक विद्यावंत निहार, भगतिभाव सों दियो अहार।
बरसी रतनराशि ततकाल, बंदौं नमिप्रभु दीनदयाल ।।

सब जीवन की बंदी छोर, रागद्वेष द्वै बंधन तोर।
रजमति तजि शिवतियसों मिले, नेमिनाथ बंदौं सुखनिले ।।

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरुसम पारस स्वाम।

भवसागरतें जीव अपार, धरमपोत मैं धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान वंदौं बहुबार ।।

दोहा—चौबीसौं पदकमल जुग, बंदों मनवचकाय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहात ।।

★

ध्यान का स्वरूप

व ध्यान करने की विधि

मुख्यतया कर्मों की निर्जरा धर्म ध्यान से ही होती है इस लिये धर्म ध्यान करना अति आवश्यक है ध्यान करने का समय प्रातः काल, मध्याह्नकाल, सायंकाल, मध्यरात्रि अथवा जिस समय मन लगे उसी समय ध्यान किया जा सकता है सामायिक त्रिकाल की जाती है उसी में ध्यान भी है मगर सर्व श्रेष्ठ समय प्रातः काल का है उस समय ब्रह्ममुहुर्त में बिल्कुल शांति रहती है वातावरण शीतल सुहावना होता है मन्द सुगन्ध हवा चलती है समय वही छः घड़ी चार घड़ी दो घड़ी उत्तम मध्यम जघन्य का है एक घड़ी चौबीस मिनट की होती है अभ्यास करने वाला जितना समय अपना मन स्थिर कर सके यह तो ध्यान अवस्था है बज्र बृषभ नाराच व बृषभ नाराच व नाराच उत्तम संहनन वाले का ध्यान १ वस्तु पर अन्तर मुहुर्त अर्थात् ४८ मिनट से कम ठहरता है फिर हीन संहनन (कम कमजोर ताकत वाला) वालों की तो कथा ही क्या ।। तत्वार्थसूत्र ।।

उत्तम संहननस्यैकाग्रचिंता निरोधो ध्यान मान्त्रमुहूर्तात् ।२७।

२७वां सूत्र अ० ९ श्री उमा स्वामी आचार्य विरचित जैन धर्म में सब से ऊंचा मुख्य तत्वार्थ सूत्र नामक ग्रंथ है जैसे गीता, कुरान आदि अन्य धर्मो के ग्रन्थ हैं। Key of Knowlegde.)

ध्यान करने का स्थान—समुद्र के किनारे, बन में, पर्वत की शिखर पर नदी के किनारे, कमलों का बन सरोवर के बीच किले के कोट में ऊंची दीवार के ऊपर, शाल वृक्षों के

सघन बन आम्र वृक्षों में, नदियों का जहा संगम हुआ हो धार पर जल के मध्य द्वीप हों, उज्जवल वृक्ष के खोखला में जहां जीव जन्तु न हों, पुराने बन में, मशान में, पर्वत की गुफा के भीतर सिद्धकूट तथा कृतिम अकृतिम चैत्यालयों में महा ऋद्धिधारी मुनियों के आश्रम में. जहां शंका कोलाहल शब्द न हो, मन्द सुगन्ध हवा चलती हो, स्त्री पुरुष नपुंसक का आवागमन नहीं सून्य घर खंडहर, सून्य ग्राम हो, पृथ्वी के नीचे का भाग या उससे ऊपर का भाग केलों की कुजलता हो, नगर के उपवन में, भगवान की वेदी के पीछे एकान्त स्थान में, वर्षा आताप शीत प्रचंड पवन डाँस मच्छर की वाधा न हो जीव जन्तु रहित सुन्दर रमणीक स्थान देखकर तिष्ठ ध्यान करे।

ध्यान करने के शरीर में स्थान—मस्तक, ललाट माथा, दोनों कान दोनों नेत्र, नाक का नाक पर दोनों भौंह के वीच की लता में, मुख में, तालुआ में, हृदय में, नाभि में इसका विस्तार श्री ज्ञानार्णवजी ग्रन्थ श्री शुभचन्द्र आचार्य कृत में बहुत विस्तार पूर्वक कथन है। ध्यान का ही ग्रन्थ है आजकल तो पुण्य के उदय से साधू समागम है। दिगम्बर साधुओं के पास कुछ दिन रह कर आत्म सिद्धिकरना चाहिए। इस संसार से भोड़ी थोड़ी निवृति निकालो।

ध्यान करने के योगाभ्यास में ८४ आसनों का वर्णन किया है। जिसमें मुख्यतया वीरासन, वज्रासन, भद्रासन, दण्डासन, उत्कटिकासन, गोदूहन आसन, खड्गासन पद्मासन, अर्ध पद्मासन, सुखासन, मुर्दाआसन इत्यादि श्री गुरू के निकट रह कर उनके चरणों की सेवा करने वाले मुमुक्ष योगी को

उनकी परम भक्ति वैयावृत्य करने पर उनके आशीर्वाद से यह मोही जीव आत्मा संसार समुद्र को तिरता हैं इसलिए जहां-जहां श्री आचार्य गुरुदेव नग्न दिगम्बर विराजमान हों उनका सत्समागम करो। "ऋते ज्ञानान मुक्ति" बिना ज्ञान और ध्यान के मुक्ति नहीं प्राप्त होती है।

दोहा—चाह दाह दाहे त्यागै, न ताह चाह।
समता सुधा न गाहे जिन निकट जो बतायो॥

ध्यान करने की भावना—इस प्रकार भानी और करनी चाहिये।

कवित

कब ग्रहवास सो उदास होइ बन जाऊँ, वेऊ निज रूप गति रोकूं मन करी की (हथिनी)। रहिहों अडोल एक आसन अचल अंग, सहिओं परीषह शीत घाम मेघ झरीकी। सारङ्ग (हिरन) समाज खाज कवधों खजेहैं आन ध्यान दल जोर जीतूं सेना मोह अरिकी। एकल विहारी जथा जात लिंगधारी कब होऊ इच्छाचारी वलिहारी वा घड़ी की।

अर्थ—हे भगवान ऐसा शुभ अवसर मुझको कब प्राप्त होवे जो मैं सर्व संग परिग्रह त्याग करके संसारी झंझटों से निवृत हो कर नग्न दिगम्बर मुनि व्रत धारण करके बन को जाऊं और वहां ही रहूं। और वहां पर ध्यान के द्वारा अपनी आत्मा का अवलोकन करूँ अडोल पद्मासन तथा अचल अंग करके नाशा दृष्टि बैठकर अपनी चंचल हस्ती के समान मन को रोक कर शीत गर्मी वर्षा ऋतु की परिषहों को सहता हुआ ऐसा ध्यान में लग जाऊं जो वन के मृग यह समझे कि पत्थर

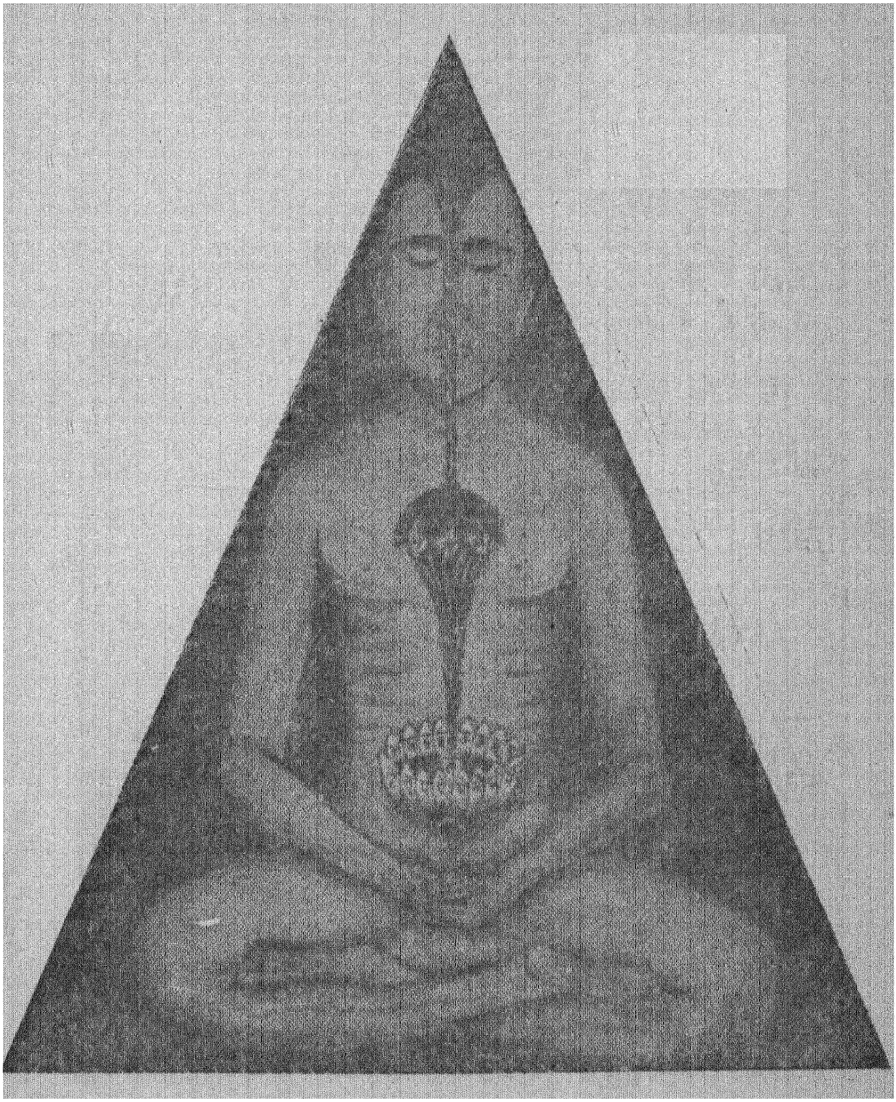

आग्नेयधारणा

१—एकांत-सेवन विचार

एक ज्ञानी आत्मा विचारता है कि वस्तु का जो स्वभाव है वही मेरा धर्म है। इस आत्माका स्वभाव चैतन्यमयी दर्शन ज्ञानका धारक अमूर्तिक है, लेकिन वह अनादि कर्मबन्धनके कारण से चतुर्गति रूप संसारमेंभ्रमण करता हुआ अनन्तकाल अनेक पर्यायें धारण करता फिरा है, इसलिए इसको परपदार्थोंसे भिन्न अनन्त-दर्शन ज्ञानमयी सच्चिदानन्दरूप सम्यग्दर्शन है, और जो न्यूना-धिकता रहित सूक्ष्म भेदोंसहित जाना जाता है वह सम्यग्ज्ञान है, और जो स्वस्व रूपमें लीन हो जाता सो सम्यक्चरित्र है इसलिए निश्चयसे मेरा धर्म आत्म-स्वरूप है। इसको बिना पहिचाने मेरा निस्तारा नहीं होगा।

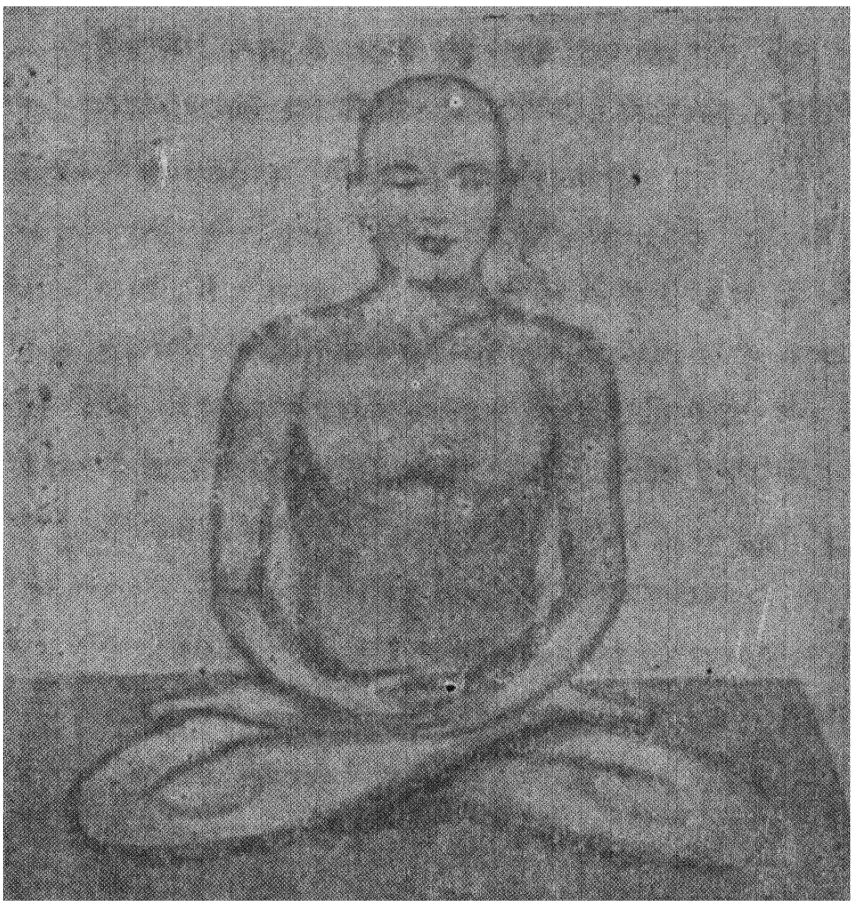

२—पृथ्वी धारणा

मैं एकांत में बैठकर विचारता हूं कि यह संसार समुद्रके समान जीवों से भरा है। समुद्र जलसे भरा है। १००० पत्तोंका कमल है। बीचमें सुमेरु पर्वत समान मेरु है। उसके ऊपर एक चौकी विराजमान है। उस पर बैठा हूँ और विचारता हूं कि सब सांसारिक झगड़ों से बचकर इस शरीर पुद्गलसे शुद्ध होने का उपाय करूँ ताकि भव-भ्रमणसे छूट जाऊँ।

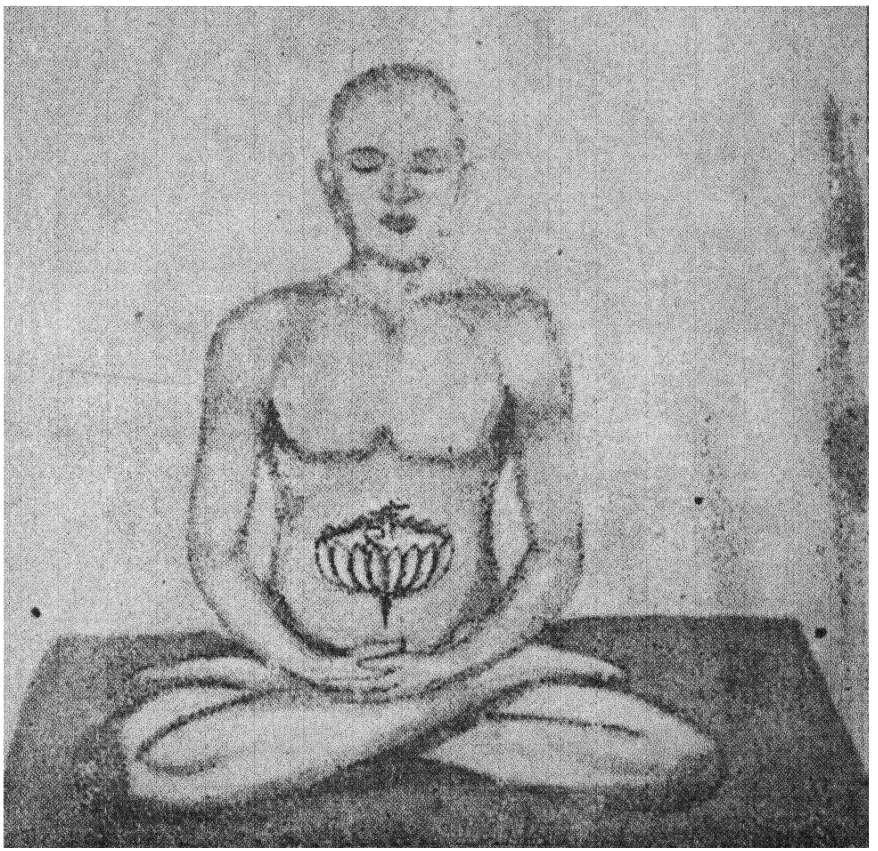

३—कमल धारणा

मैं उस चौकी पर बैठा विचारता हूँ कि मेरे नाभि-स्थान पर सोलह पत्तों का श्वेत रंग का कमल खिला हुआ है, जो बहुत विस्तार में फैला है, तथा जो शुद्ध और साफ है। मैं अपनी ज्ञानदृष्टि उस पर जमा कर देखता हूं।

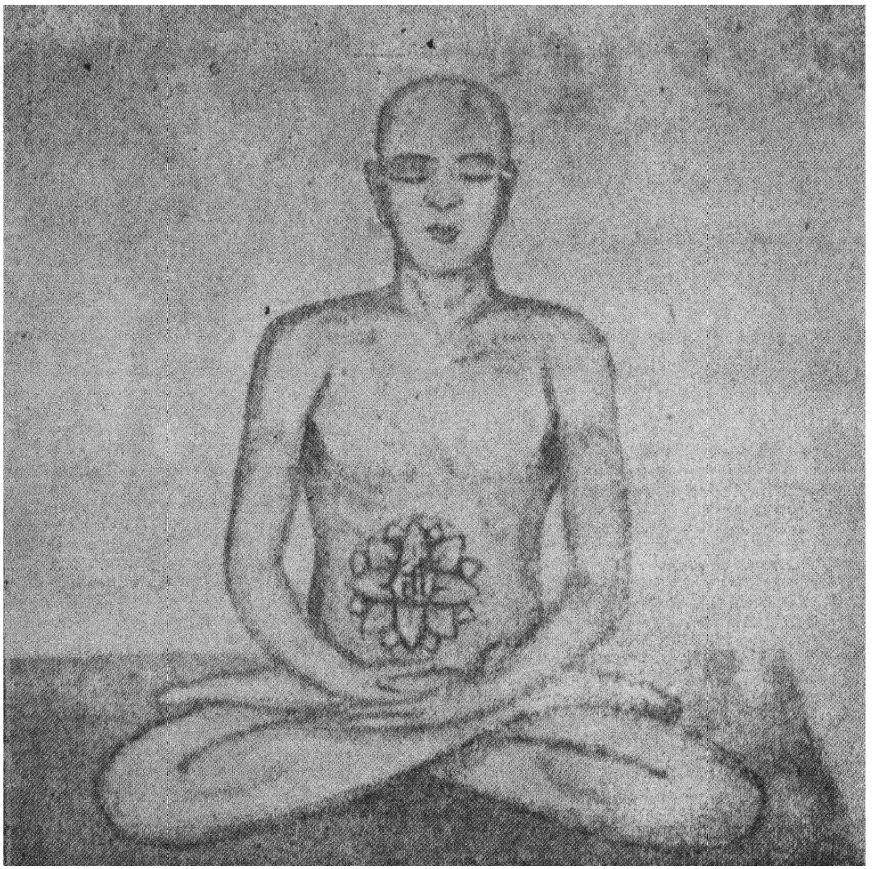

४—बिन्दु-कमल

मेरे नाभि-कमल में जो खिले हुए पत्ते है उनमें हर एक पत्ते पर पीत्त रंग के बिन्दु हैं, जो हर एक पत्ते पर बारह बारह हैं। बीच के भाग में भी १२ हैं, और बीच में हीं अक्षर है। वही मूल मैं हूँ। मैं बिन्दु के ऊपर दृष्टि रख कर जप करता हूँ। मेरा मंत्र है-स्वाहाँ २।

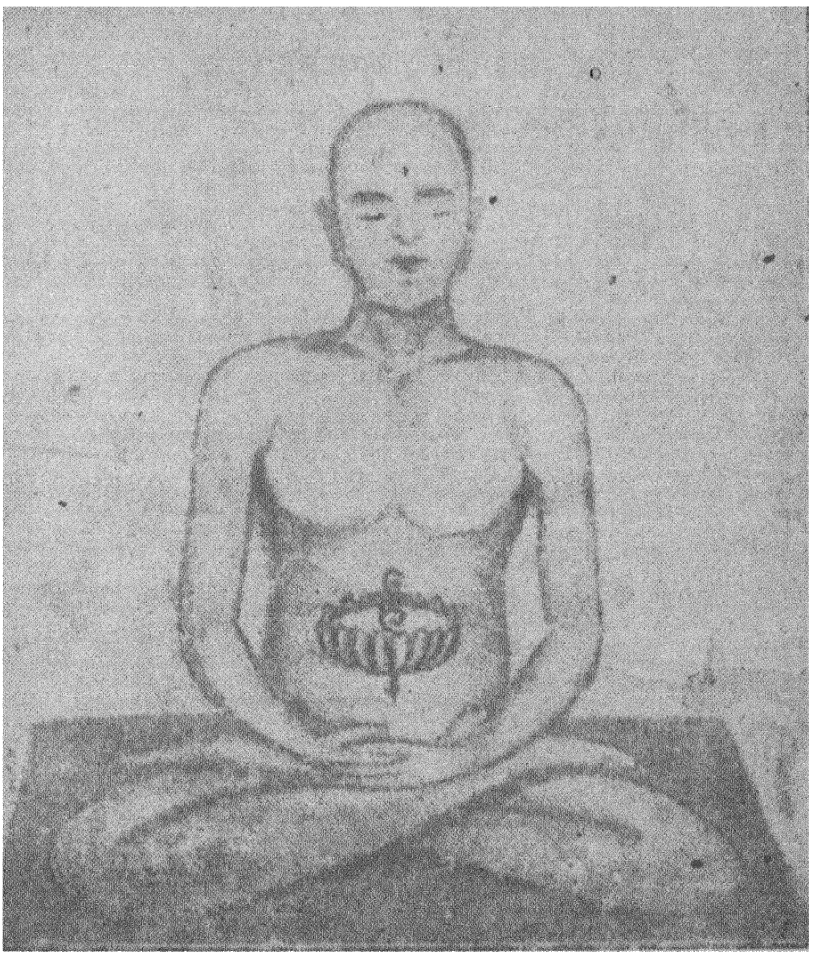

५–ई ।

जो नाभि—कमल में विराजमान है, वो प्रकाशमान चमक रहा है। मैं उसीमें अपने मनको रोकता हूं। और विचारता हूं कि शरीर भर में प्रकाश हो रहा है।

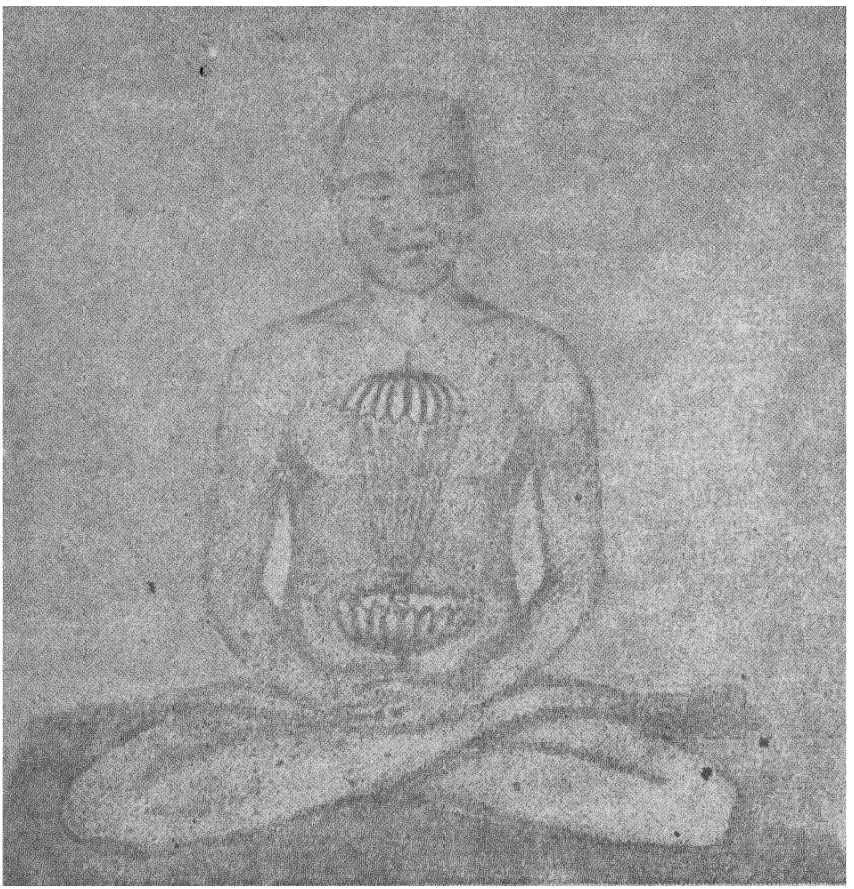

६—कर्मरूपी कमल ।

मेरी आत्मा के संग आठ कर्म अनंतकाल से लगे हैं । ये ही मेरे ज्ञान को ढांकते हैं । मैं उनको कमल के रूप में एकत्र कर हृदय-स्थान में स्थापन कर भावनारूपी ध्यान की अग्नि में उन्हें जलाना चाहता हूं ।

या ऐसा समय का समय है सो आयकर अपनी रगड़-रगड़ कर मुझ से पीठ खुजाय जावें और मेरा ध्यान बिल्कुल चलायमान न हो बस फिर तो मोह रूपी सेना को क्षण मात्र में जीत लूं ऐसी अवस्था एकल विहारी स्वच्छन्दता कब प्राप्त हो, श्री गुरु कहते हैं।

भावना करने वाला भव ससार से तिरता है और ध्यान करने वाला एक दिन ध्याता हो जाता है मोक्ष की प्राप्ति अभ्यास, वैराग्य, और ध्यान से ही है—कहने का तात्पर्य यह नहीं है सब घर छोड़ कर बाबा जी ही हो जाओ लेकिन जो समय मिले उसको अनमोल समझ कर अपने ससार से पार होने का भी लक्ष्य रखना चाहिए बिना कारन मिलाये कार्य की सिद्धि नहीं होती भेद विज्ञान के माने यही हैं प्रति समय आत्मा में ये ही चितवन रहे "तुषभाख भिन्न" अर्थात् स्व सो स्व पर सो पर जैसे धान का छिलका धान से जुदा है वैसे ही यद्यपि जीव और शरीर एकमेक हैं परन्तु लक्षण दोनों का जुदा-जुदा है जब शरीर ही जुदा है तो इससे सम्बन्ध रखने वाली (जल से भिन्न कमल है)। संसार की विभूतियां व कुटुम्ब परिवार इत्यादि मेरे कैसे हो सकते हैं "विदूषां कि कर्तव्य शीघ्र संसार सन्तति छेदम्।"

पृथ्वी धारणा

अब मौन द्वारा पद्मासन या अर्ध पद्मासन व खड्गासन और भी ध्यान के अनेकों आसन हैं लेकिन ये सुगम पड़ते हैं इनके द्वारा बैठ कर प्रथम चिन्तवन करे मेरा नाम तो जीव

है जीव हूँ चिरंजीव त्रिरकाल चिरंजीव हूँ अखंडित, अमंडित, अरूपी, अलख, अदेही, अनेही, अजेई, अचख, परम ब्रह्मचर्य, परम शांतमय, निरालोके, लोकेश, लोकांत तम, परम ज्योति, परमेश, परमात्मा, परमसिद्ध प्रसिद्ध शुद्धात्मा, चिदानन्द, चैतन्य, चिद्रूप हूँ निरंजन निराकार शिव भूप हूँ इस प्रकार विचार करता हुआ विचारे कि यह मध्यलोक क्षीर समुद्र के समान निर्मल जल से परिपूर्ण है उसके मध्य में जम्मू द्वीप के समान गोलाकार एक लाख योजन का एक हजार पत्तों का धारण करने वाला तपाये हुये सुवर्ण के समान चमकता हुआ एक कमल है कमल के मध्य में (कर्णिका स्थान में) पीतवर्ण (स्वर्णाकार) एक सुमेरु पर्वत है उसके ऊपर पांडुक बन है उसके बीच मैं पांडुक शिला पर स्फटिक का एक सफेद सिहासन है उसी सिहासन पर मैं आसन लगाकर बैठा हूँ, और मेरे बैठने का उद्देश्य अपने पूर्व संचित कर्मों को जलाकर अपनी आत्मा को निर्मल शुद्ध बनालूं इस प्रकार के चितवन करने को पृथ्वी धरणा कहते हैं।

अग्नेयी धारणा का स्वरूप

अब विचार करता है यानी कल्पना द्वारा अपने नाभि के ऊपर भीतरी स्थान में ऊपर ऊपर हृदय की ओर उठा हुआ या फैला हुआ सोलह पत्र के सफेद कमल का चिन्तवन करे पत्तों के चारों तरभ लाल लकीर हलकी शोभा युक्त देखे और उसके ऊपर के सर के लमान पीतवर्ण खिखे १६ स्वरों का चिन्तवन करे। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः फिर इस ही कमल के मध्य कर्णिका के बीचो बीच

दूसरा कमल हृदय में अधो मुख किये बनावे जिसके पत्तों पर जोकि आठ पांखुडियों का होगा ज्ञानावर्णी, दर्शनावाणी वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय, यह हर पाँखरी पर लिखे और नीचे वाले १६ पांखड़ी के कमल के बीचो बीच है लिखे बीच में डंडी के ऊपर अब विचारे के हं के रकार रेफ जो है ऊपर इसमैं से अग्नि का शिखा ऊपर को वढ़ते पढ़ते आठों कर्मों, को जला रही है पुनः ऐसा विचार करे अग्नि की ज्वाला बढ़ गई और सम्पूर्ण शरीर को जला रही है शरीर भस्म रूप हो गया है अब अग्नि धीरे धीरे शांति हो गई है इस प्रकार से चिंतवन करना अग्नेयी धारणा है इसमें अभी और त्रिकोण र, र, र, इत्यादि बहुत क्रिया हैं सो यहां संक्षेप से वर्णन किया है।

वायु धारणा

फिर ध्यानी विचार करता है आकाश में बड़ी जोर की हवा चल रही है जो सुमेरु पर्वत को भी चलायमान कर रही है बड़े बड़े मेघों को गर्जते हुये देखे अपने चारों तरफ एक गोला मंडप बना हुआ देखे घेरे में आठ स्थानों पर "स्वाय" "स्वाय वायु" बीज लिखा है बड़ी धूल वायु की भस्म को इस गर्जते हुये बादलों ने उड़ा दिया और स्थिर रूप शांन्ति मय चिंतवन करे इसको वायु की धारणा कहते हैं।

अब वारुणी धारणा का स्वरूप

इसके अनन्तर ध्यानी पुरुष आकाश में बड़े बड़े मेघों को गरजते और बिजली चमकते मूसलाधार पानी बरस रहा है में

बीच में बैठा हूँ और मेरे ऊपर अर्धचन्द्राकार वरुण मण्डल (जल) प० ये० जल के बीजाक्षरों से बरस रहा है वह मेरी आत्मा पर लगी हुई धूली को धोकर साफ कर दिया है।

तत्व रूपवती धारणा

अब मेरी आत्मा सर्व कर्मों से रहित व शरीर रहित पुरषाकार सिद्ध भगवान के समान शुद्ध है ऐसे शुद्ध आत्मा में तन्मय हो जावे तो तत्व रूपवती धारणा है इस प्रकार इस पिंडस्थ ध्यान के द्वारा साधन करते करते योगी थोड़े ही समय में ही अपनी आत्मा को परमात्मा स्वरूप में देखता है और तारण तरन जो मनुष्त भव का कर्तव्य है उससे सुशो. भित होकर अनन्तकाल तक कृत्य कृत्य हो जाता है ये ही सार है।

अब दूसरा पदस्थ ध्यान के स्वरूप को कहते हैं, पद माने अक्षरों का ध्यान करने वाला जो अक्षरों का ध्यान करता है वह अपनी नाभि में व हृदय में ऊपर कथन के अनुसार ही १६ पांखुरी या ८ पांखुरी का कमल रचता है और इन अक्षरों को लिखकर इन्ही पर माला फेरता है व ध्यान करता है इसमें मन एकाग्र हो जाता है। दूसरी तरफ जाता नहीं क्योंकि भूल जायगा इसलिए यह साधन बहुत ही उत्तम है पद्मासन बैठ कर आंख बन्द करके बहुत सीधी विध है अपने शरीर के भीतर व्याप्त आत्मा को शुद्ध जल की तरह निर्मल भरा हुआ विचार करे और मन को उसी जल में उसी जल समान आत्मा में डुबोये रखे जैसे कोई गंगा जमुना में गोता लगाता है और जब मन हटे तब **अर्हं, सोऽहं, सिद्ध अरहंत ॐ**, आदि मन्त्र पढ़ने लगे फिर उसी में डुबोवे

अपने को स्पटिक की मूर्ती समान उज्ज्वल सफेद देखे विचारे मन्त्र जो कमल के पत्रों पर लिखे इसका नाम णमोकार मन्त्र है।

णमो, अरिहंताणं, णमोसिद्धाणं, णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोएसव्वसाहूणं॥

यह ३५ अक्षर का है यह अनादि मन्त्र हैं सर्व विघ्न और पापों का भूत, प्रेत, रोग, शोक, दरिद्रता का निवारण करने वाला और सांसारिक सुख देने वाला और परम्परा मोक्ष का साधक है यह किसी से भी बादी प्रतिवादी दुश्मन मन्त्र धारी से जीता नहीं गया है 'अपराजित मन्त्रों य सर्व विघ्न बिनाशनं' मंगलेषुचसर्वेषु प्रथमों मंगलोमतः. इस मन्त्र के जपने की आज्ञा चाहे शुद्ध हो व अशुद्ध हो किसी भी संकट की अरस्था में पड़ा हुआ भजे उसकी मुक्ति होती है समाधि का मूल मन्त्र है इस मन्त्र की तारीफ और प्रभावना, और बल लिखूं तो एक हजार पन्नों में भी नहीं लिख सकता हूँ इसका एक लक्षवार जाप्य धूप दीप से शुद्ध दशाङ्ग अपने हाथ की बनाई हुई से पूर्व दिशा की ओर बैठ कर सफेद धोती डुपट्टा घर के धुले हुये हों पानी से धोकर शुद्ध शरीर स्नान वगैरह करके सफेद माला से जपे और रात्री को भोजन करने का त्याग करे जरूरत पड़ने पर सिर्फ जल दवाई शुद्ध वैद्य के यहां की खावे पीवे ब्रह्मचर्य से रहे मद्य मास मधु अभक्ष खावे नहीं तो सिद्ध करले भगवान के मन्दिर में मूर्ती के आगे बैठे या किसी भी शुद्ध भूमि में ऊपर नीचे मकान का एकान्त स्थान हो तो परम सुख अवस्था को प्राप्त होता है और जो मन में विचारे सो कार्य सिद्ध होता है इसका कहां तक बर्णन करूं इसकी

महिमा। कवित्त—हिंसा के करैया मूख झूंठ के बुलैया पर धन के हरैया करुणा न जाके अङ्ग में, रैन के चखैया मधु-पान के करैया 'कंदमूल के भखैया कठोर जाको हियो है। नर्क के जवैया पर नारी के रमैया अूंठ साख के भरैया जिन घोर पाप कियो है, ऐसे तिर जांव छिन एक में विनोदीलाल जिनने णमोकार मन्त्र अन्त समय लीयो है—और १६ अक्षर का **अरहंत, सिद्ध, आयरिय, उवज्झाय साहू** छह अक्षर का **१—अरहंत सिद्ध** यह नाम पद कहलाता है। २—**अरहंत साहू** ये स्थापना पद कहलाता है ३—**ॐ नमः सिद्धेभ्यः** वे भाव पद कहलाता है। पांच अक्षरों का **अ सि आ उ सा** चार अक्षर का **अरहंत** दो अक्षर का **सिद्ध ओं हीं** एक अक्षर का **ॐ** कहलाता है।

मुख में सफेद रङ्ग का एक कमल आठ पत्रों का सोचे उन आठों पत्रों पर **ॐ णमो अरिहंताणं** इन ८ अक्षरों को १—१ करके लिखे चित्र खींचे भजे दोनों भौंह की लता के बीच ह चमकता हुआ ध्यावे इत्यादि अनेक क्रियातें इस चंचल मन को रोकने की हैं।

अब ३ रूपस्थ ध्यान को कहते हैं

साक्षात् शमोशर्ण मैं भगवान को बैठा समझो।
(इसका विस्तार बहुत बड़ा है शमोशर्ण पाठ से देखो)

यहां किंचित संक्षेप से वर्णन करते हैं श्री ऋषभ देवे प्रथम तीर्थंकर को प्रत्यक्ष अरहंत अवस्था में धर्म का उपदेश करते हुये का ध्यान करे जिनकी सभा पृथ्वी से पांच हजार धनुष

ऊँची आकाश (एक धनुष चार हाथ का होता है) में बीस हजार सीढ़ीन कर संयुक्त है हरित नील मणि मय भूमि का समा-बृत्ति झालर के आकार गोल हैं १२ योजन (एक योजन ४ कोस का होता है) प्रमाण सोभे हैं अष्ट प्रतिहार्य सहित (१) अशोक बृक्ष (२) देवों द्वारा पुष्प वृष्टि, (३) दिव्य ध्वनि, (४) ६४ चमर भगवान के सिर पर ढुर रहे हैं देवताओं द्वारा (५) छत्र तीन सिर के ऊपर लग रहे हैं (६) सिंहासन स्फटिक पर विराजमान हैं (७) प्रभु के पीछे भामंडल की दीप्त कोनि सूर्य किरणों का ससुदाय रूप ही है जिसमें भव्य जीवों के तीन पिछले और तीन आगे और एक मौजूद ऐसे सात भव भवान्तर प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं (८) दुन्दुभी बाजे साढ़े नौ करोड़ जाति के बज रहे हैं इत्यादिक नाना देवकृत विभूतियों द्वारा रचा हुआ समवशरण भगवान ध्वजा स्थान के आगे एक हजार खंभो के ऊपर महादेय नाम मंडफ है तिसके प्रविवार मंडफ विषे पद्ममासन जैसे वज्रविषे उकेरी प्रतिमा होय रहे निश्चल रहें सहश्र दल कमल के ऊपर अन्त. रीक्ष चार अँगुल पूर्व दिशा मुख किये हैं। परम ओदा-रिक शरीर होने से छतुर्मुख दर्शन होय है विराजमान हैं भग-वान का उपदेश दिव्य ध्वनि द्वारा ४ बार होय है सवेरे मध्यान्यकाल, साझ, मध्यरात्री।

गाथा—पुव्वह् णे मज्झह् णे मज्झिमायरत्तीए।
छह छह घड़ियाणिग्गयदीवज्झुण्णी कहइसुतत्ते ॥

भगवान की वाणी सर्वाङ्ग से निकले है लेकिन देखने में कंठ से आवाज ओंकार शब्द रुप निरक्षरी ध्वनि गद्गद् वाणी

निकले है तालूओं से जीभ लगे नहीं होठ से होठ लगे नहीं परम हितोपदेशी भव्य जीवन के कल्याण करने वाली सब बैठे हुए जीवों की अपनी-अपदी भाषा में समझ में आवे हैं ऐसा अतिशय है जैसा एक रूप वर्षा मेघ का जल नाना रूप वृक्षों में नाना रूप होकर फल फूल देते हैं बारह सभाओं के नाम जो श्री महावीर का विपुलाचल पर्वत पंच पहाड़ी राजग्रही विहार में है राजा श्रेणिक उप नाम विम्बसार राज्य करता थ आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व जब समोशरण देवताओं द्वारा रचा गया था उसमें बारह सभाओं में उपदेश सुनने वाले श्रोताओं की गणना इस प्रकार थी।

(१) सभा के कोठा में श्री ग्यारह गणधर जो कि सभी ब्राह्मण वर्ण के हुये हैं गौतमादि को लेकर १४००० मुनीश्वर थे तिन में ९९ साधारण मुनि, ३०० अङ्ग पूर्व के धारी, १३०० अवधिज्ञानी, ८०० ऋषि विक्रिया रिद्धिधारी, ५०० चार ज्ञान के धारी ७०० मुनि केवल ज्ञानी, ९०० अनुत्तर वादी ये महावीर के संघ में मुनि दश गणों में विभक्त थे ये ग्यारह गणधर उनकी देख भाल करते थे—ये ग्यारहों गणधर पूर्व अवस्था में ब्राह्मण वर्ण वेद वेदान्त के पाठी हजारों शिष्यों कर संयुक्त महान् विद्वान अभिमानी थे सो महावीर के शमोशरण के मानस्थम को देखकर नम्री भूत हुए तुरन्त नग्न दिगम्बर दीक्षा लेकर भगवान की दिव्य ध्वनि को खिरावते भये अर्थात् उपदेशामृत पीते भये।

(२) कल्पवासी देवनं की देवाङ्गना असंख्यात बैठी हैं।

(३) चन्दना आदि गणनी कू मुख्य लेकर छत्तीस हजार आर्यिका साध्वी और श्राविका ३ लाख बैठी है।

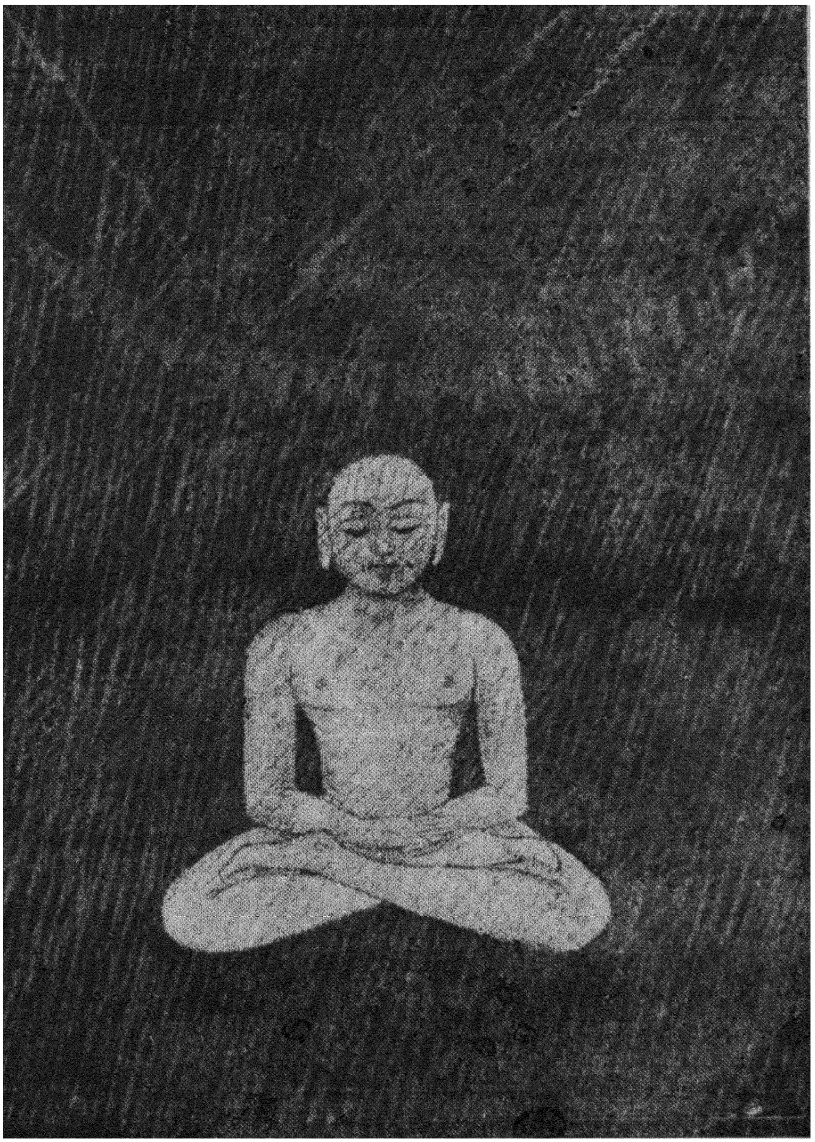

पिंडस्थ ध्यान की वारुणी (जल) धारणा का स्वरूप

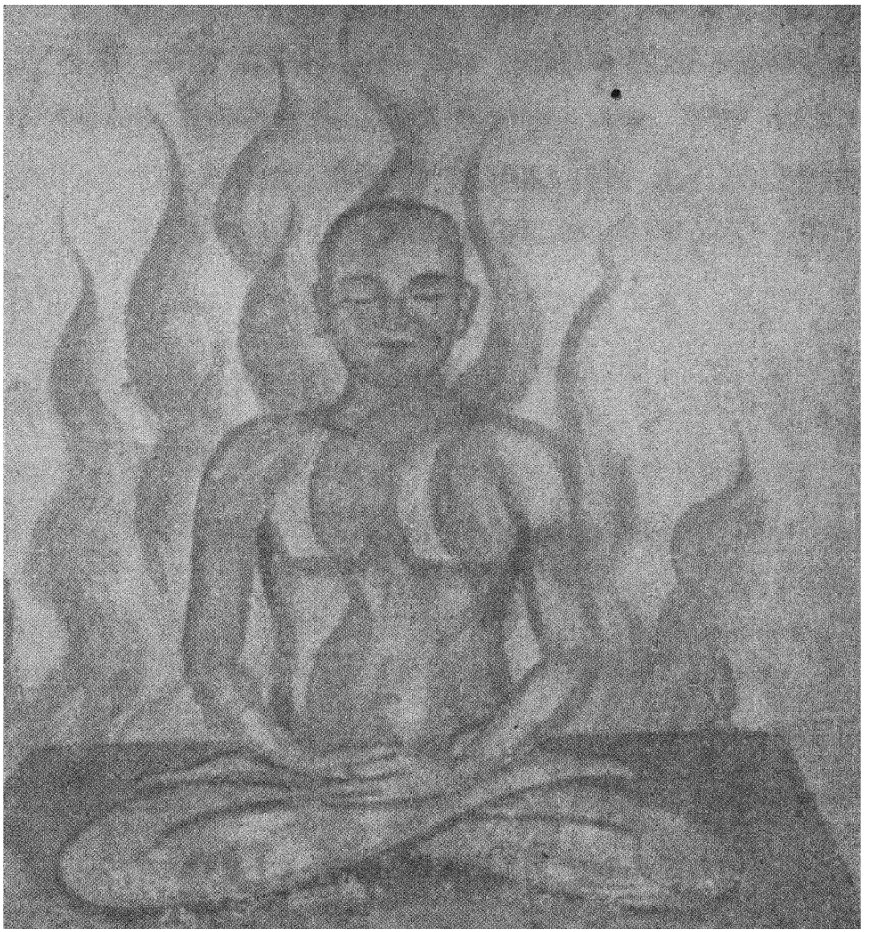

९—पूर्ण अग्नि

अन्दरकी अग्निने कर्मरूपी कमलको भस्म कर दिया। जो शरीररूपी पुद्गल है उसको बाहरकी अग्नि भस्म कर रही है। आत्मा शाँतभाव स ध्यान में लीन है।

१०--शरीररूपी खाख की ढेरी

कर्मरूपी कमलको और शरीररूपी पुद्गलको ज्ञानमई अग्निने भस्म कर दिया है। आत्मा शरीररूपी भस्ममें छिपी है, ऐसा विचार करना चाहिए।

११—वायु धारणा ।

ज्ञानमयी आत्मा विचारती है कि वायु वेग से चल रही है, शरीररूपी भस्म को उड़ा रही है, और शरीर-भ्रमाण आत्मा शान्त बैठा है ।

१२—जल धारणा।

ज्ञानी आत्मा विचारता है कि चारों तरफ बादल घिर आये हैं। पानी वेग से गिर रहा है। जो कुछ कर्मरूपी और शरीररूपी रज आत्मा में है उसको धोकर साफ कर रहा है। आत्मा शांत ध्यान में मग्न है।

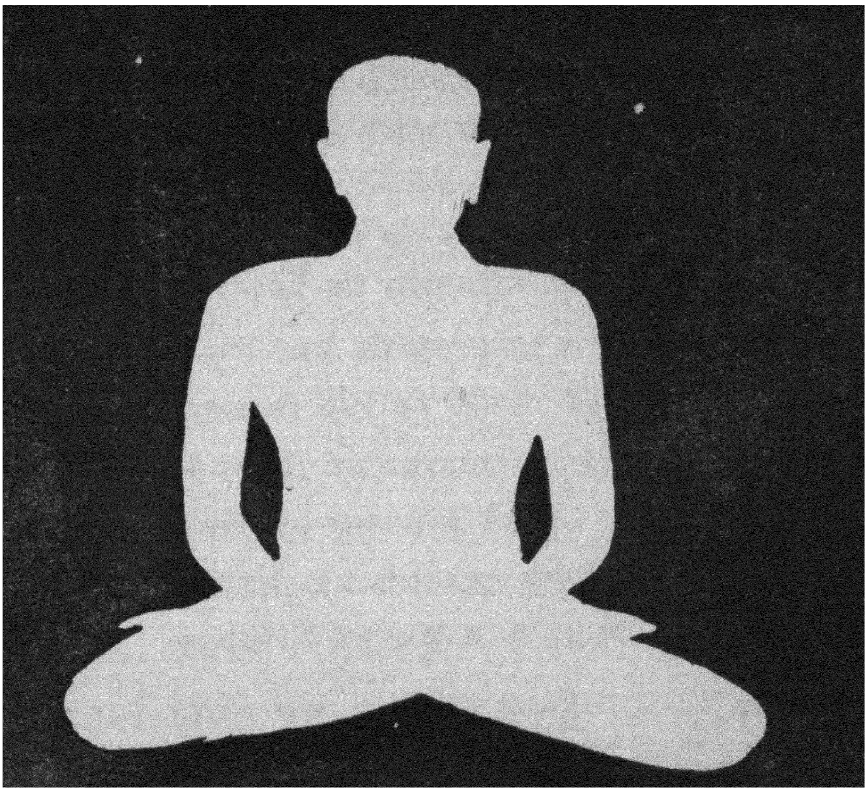

१३—शुद्ध भावना

ज्ञानी आत्मा विचारता है कि आत्मा के जो अनादि काल से आठ कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि लगे हैं, और उन्हीं के कारण अनेक शरीर धारण कर भटक रहा था. वे सब जल कर भस्म हो गये हैं। और शुद्ध जल से धोकर आत्मा साफ हो गया है। अब मैं शुद्ध निर्विकार आत्मा स्फटिक के समान हूँ, मैं उसी में मग्न हूँ।

(४) राजराजेश्वर श्रेणिक राजा आदि श्रोतान में मुख्य जिन्होंने भगवान से साठ हजार प्रश्न किये और १ लाख मनुष्य और बैठें हैं।

(५) ज्योतिषी देवन की देवाङ्गना चन्द्रमा, सूर्य, तारा, नक्षत्र, ग्रह इत्यादिकों की असख्याति बैठी हैं।

(६) व्यन्तर देवन की देवाङ्गना असंख्याति बैठी हैं।

(७) भवनवासी देवों की देवियां असंख्याति बैठी हैं।

(८) भवनवासी देव असंख्याति बैठे हैं।

(९) व्यन्तर देव असंख्याते बैठे हैं।

(१०) ज्योतिषी देव असंख्याते बैठे हैं।

(११) कल्पवासी देव असंख्याते बैठे हैं।

(१२) तिर्यंच माने पृथ्वी पर चलने वाले पशु सभी जाति के आकाश में उडने वाले पक्षी सभी जाति के जल रहने वाले जीव सभी जाति के सब पास पास बैठे हैं। भगवान की परम वीतराग शाँति मुद्रा के प्रभाव से जो क्रूर जीव हैं। एक-एक के परस्पर विरोधी घातक उनका वैर भाव मिट जाता है बिल्ली के पास चूहा, शेर के पास हिरणी, गाय सर्प के पास, मोर इत्यादि सभी जीव सुख से बैठ कर उपदेशामृत का पान करते हुए अपने को भगवान का दर्शन करके मुग्ध होते हैं और अनेकों जीव पंच महाव्रत यानी नग्न दिगम्बरी दीक्षा व ऐलक, छुल्लक इत्यादि प्रतिमाधारी, अणुव्रतधारी, ब्रह्मचारी व्रत नियम, यम, भगवान से दीक्षा लेकर अपने इस मनुष्य जन्म को कृतार्थ करते हैं। ऐसा उस स्फटिक के सिंहासन पर बैठा हुआ रूपस्थ

ध्यान का चितवन करे मानो साक्षात् में आज वीर प्रभु के समोशरण में ही मनुष्यों के कोठे में बैठा उपदेशामृत का पान कर रहा हूं यह अरहंत भक्ति साक्षात् मोक्ष का कारण है।

पुस्तक बहुत छोटी है, इसका विस्तार हजारों पन्नों में भी नहीं लिखा जा सकता है, जैन ग्रन्थों में सब वर्णन है।

साकारं निर्गताकारं निष्क्रिय परमाक्षरं।
निर्विकल्पं च निष्कंपं नित्य मानिन्द मंदिरं॥
विश्वरूपं विज्ञात स्वरूपं सर्व दो दितम।
कृत्य-कृत्य शिवं शांतं निष्फलं करण च्युतम्॥
निःशेषभव सम्भूत क्लेश द्रुमेहताशनम्।
शुद्ध मत्यन्त निर्लेपं ज्ञान राज्य प्रतिष्ठितम्॥
विशुद्धा दर्श संक्राना प्रितिविम्ब समप्रभम्।
ज्योतिर्मयं महावीर्यं परिपूर्ण पुरातनम्॥
विशुद्धाष्ट गुणोंपेतं निर्द्वन्द्र निर्गतामयम्।
अप्रमेयं परिच्छिन्नां विश्वतत्व व्यव स्थितम्॥
यदग्राह्यवहि भावै ग्राह्यं चान्तर्मुखैः क्षणात्।
तत्स्व भावात्मकं साक्षात् स्वरूपं परमात्मनः॥

अथ—परमात्मा कैसा है, प्रथम तो साकार है आकार सहित है अर्थात् अरहंत अवस्था में शरीर कर संयुक्त होने से सकल परमात्मा है और निर्गताकार कहिये निराकार भी है अर्थात् सिद्धि अवस्था में शरीर से कुछ किंचित न्यून पुद्गल पिन्डुरूप आङ्गोंपांग न होकर जैसे सांचा बनता है, ढलाई का उसमें वस्तु भर दी जाती है और वह निकल जाने पर उसका जैसा

आकार निराकार रूप रहता है वैसा है पुद्गल शरीर के आकार समान उसका आकार नहीं है और निष्क्रिय कहिये क्रिया करके रहित है, परमाक्षर स्वरूप है, विकल्प रहित है, नित्य है, आनन्द का घर है तथा विश्वरूप है। समस्त ज्ञेयों के पदार्थों के आकार जिसमें प्रतिबिंबित हैं तथा अविज्ञा स्वरूप है अर्थात् मिथ्या दृष्टियों ने जिसका स्वरूप जाना नहीं, ऐसा है।

तथा सदा काल उदय रूप है, कृत्य-कृत्य है, जिसको कुछ भी करना बाकी नहीं रह गया है तथा शिव है कलयाण रूप है, शान्त है, क्षोभ रहित है, निष्कल कहिये शरीर रहित है तथा कारण च्युत कहिये शोक रहित है इन्द्रिय रहित है, शुद्ध है, कर्म रहित है जिसके कोई लेप नही है, ज्ञानरूपी राजा में, सर्वज्ञता में स्थित है तथा निर्मल दर्पण में प्राप्त हुये प्रतिबिम्ब के समान प्रभा वाला है तथा जोतिमय है जिसका ज्ञान प्रकाशमय है। अनंत वीर्य रूप परिपूर्ण है, जिसके कभी कोई अवयव अँश घटते नहीं तथा पुरातन है, अर्थात् किसी ने नया नहीं बनाया है। अनादि अनन्त है, निर्मल सम्यग्ज्ञान रूपी अष्ट गुणों कर सहित है, निर्द्वन्द है, रागादिक से रहित है, रोग रहित है, अप्रमेय है जिसका प्रमाण किया जा सकता नही है अर्थात् भेद ज्ञानी योगियों द्वारा ही देखा जा सकता है अर्थात् वाह्य भावों से तो देखा नही जा सकता लेकिन अन्तरङ्ग भावों से क्षण मात्र में ग्रहुण करमे योग्य है। इस प्रकार परमात्मा स्वरूप है सो यह ससार अवस्था में तो शक्ति रूप है और मुक्ति अवस्था में व्यक्ति रूप है ऐसा जानकर ध्यान गोचर

करना चाहिये जिनमें १८ दोष नहीं होते हैं और अनन्त गुणों के समुदायकर संयुक्त होते हैं। भूख. प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण. भय, गर्व, राग, द्वेष मोह, चिन्ता, रजि, अरनि, खेद, पसीना, निद्रा, आश्चर्य करके रहित हैं, अनन्त गुणों कर संयुक्त।

चोथा रूपातीति ध्यान

सिद्ध भगवान को शरीर रहित पुरुषाकार शुद्ध स्वरूप विचार उनके स्वरूप और गुणों का चिंतवन करे लीन हो।

जब इन क्रियाओं द्वारा मन हटे, तब ईश्वर भक्ति करे। अध्यात्मिक वैराज्ञ रस से भरे भजनों को स्तुती के पाठों को पढ़े। अनेक प्रकार के बाजों के साथ भी भक्ति गान वैराज्ञ रस के ही कर सकता है। कीर्तन करे, जिनेन्द की प्रतिमा का अवलोकन करे, सामने बैठ जावे, आंखों के पलक झपकने न पावें, इसकी अद्भुत महिमा है। रोजाना अभ्यास करे, बिल्कुल सन्नाटे में इसका रस मुझे श्री महावीर जी चांदनपुर में रात को ९ वजे के बाद आता था। मैंने ज्यादा से ज्यादा एक महीने में ३० मिनट की प्रेक्टिस बढ़ाई थी। मानो मूर्ति मुख से बोल रही है, प्रभु से साक्षात् मुलाकात हो रही है, अनन्य भक्ति इसको कहते हैं। यह प्रत्यक्ष आत्मिक रस है, इसको जिसने किया है उसने पाया है। मिश्री को मीठी मौठी कहने के सिवा और क्या तारीफ कर सकते हैं, हां तारीफ में भी मुँह भर आता है, लेकिन जिसने उसको चखा है उसका स्वाद तो वो हीं जान सकता है कि इतनी मिठास है। यह सब भेद ज्ञान की प्राप्ति करने के उपाय हैं। इस संसार के झंझटों से थोड़ा

समय भी जिन्होंने निकाला है वह इस धर्म ध्यान को ध्याय कर इस कलिकाल मे पल्ला छुड़ाये कर मोह को घटा कर अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं "खोवत करोरन की एक एक घड़ी है" अब चौथा शुक्ल ध्यान इस वक्त इस क्षेत्र में होना नहीं है, जो साक्षात् मोक्ष का कारण है, इसी भव से क्योंकि संहनन नहीं है। ८४ हजार वर्ष बाद यहां से मोक्ष जा जा सकता है। यहां मे तप ध्यान और दान पुण्य के प्रताप से स्वर्गों के सुख व भोग भूमि के सुख वह विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर मोक्ष जा सकया है। विदेह क्षेत्र से हर वक्त मोक्ष प्राप्ति होती है।

आत्मसंबोधन

सप्तधातुमय हाड़ मास चाम रुधिर

जिस प्रकार नारियल में ऊपर छूंछ जटा नरेली और अन्दर की ललाई इन तीनों से गोला पृथक है उसी प्रकार आत्मा चैतन्य गोला है वह इन स्थूल औदारिक शरीर रूपी छूछे जटा, कार्माण शरीर रूपी नरेली और अन्दर के रागद्वेष रूपी ललाई तीनों से पृथक चैतन्य बिम्ब सहजानन्द शांति रस की मूर्ति है जिस प्रकार गोले की गरी में मिठास भी है सफेदी भी है उसी प्रकार आत्मा है उसमें जाबिकारी प्रवृतियां होती हैं वे पराश्रय से होती हैं वह वास्तव में चैतन्य की जाति नहीं है। आत्मा प्रज्ञा ब्रह्मस्वरूप है उसकी पहिचान करके स्थिर होना और पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट हो जावे वही तो मोक्ष है

पहिले तो परिपूर्ण आत्मा का विश्वास आना चाहिए, अत्यन्त विवेक से अत्यन्त संत समागम से अत्यन्त रुचि और पात्रता से आत्मा समझ में आता है आत्मा ऐसा नहीं कि समझ में न आवै यदि आत्मा न समझा जा सके तो धर्म ही कहा से हो ?

इस जगत में लाखों रुपया मिले या स्वर्ग मिले यह कोई दुर्लभ बात नहीं है किन्तु आत्मा का समझना दुर्लभ है इस मानव जीवन में ऐसे आत्मा को समझ लेना योग्य है इस जीवन में ऐसे आत्मा को समझ लेना योग्य है इस जीवन में इस आत्मा को समझने के लिए थोड़ी २ निवृती लेकर राग को कमती करना चाहिये ये दशा क्रमश आगे बढ़कर वीतराग बना देगी और पूर्ण सिद्ध पद को प्राप्त करा देगी। हम अरहन्तों को सिद्धों को नमस्कार करते है वे अरिहन्त सिद्ध दोनों आत्मा की ही पवित्र दशा तो है ऐसा चितवन करो।

दोहा—दासोहं रटता प्रभु सु आया तुमरे पास।
दादरसत ही मिट गया सोऽहं रहा प्रकाश॥
सोऽहं-सोऽहं ध्यावते नहिं रह सका सकार।
दीप अहंमय हो गया अविनाशी अविकार॥

जिस प्रकार दूज का चन्द्रमा धीरे-धीरे बढ़कर पूर्णमासी को पूरा हो जाता है उसी प्रकार आत्मा का सच्चा ज्ञान रूपी चन्द्रमा जिसे प्रगट हुआ हैं उसे पूर्ण परमात्म दशा होती है जैसे छोटी पीतल में चरपराहट भरी है दिखाई नही देती है उसे जानकर पत्थर पर घिसने से और चाटने से पता चलता है दियासलाई में अग्नि मौजूद है घिसने पर प्रगट होती है

जिस प्रकार एक मोरनी के अंडे में पूरे मोर होने की ताकत विद्यमान हैं उसी प्रकार आत्मा में अल्प ज्ञान होने पर भी उसमें सर्वज्ञ यानी प्रभु होने की शक्ति भरी हुई है श्री अरहंत भगवान अपने उपदेश में कहते हैं हे भव्य जीव तू भी अपनी सर्वज्ञ शक्ति से पूर्ण है तेरी मुक्ति हमारे पास नही है हमने तुझको परिभ्रमण नहीं कराया है और न तुझे हम मुक्त ही कर सकते हैं तू तेरे ही उपादान कारण से कर्म काटकर मुक्ति जा सकता है हम तो सिर्फ निमित्त मात्र तुझे रास्ता बताने वाले हैं हम भी पूर्व तेरे ऐसे ही संसारी जीव थे इसलिए अपने अन्तर स्वभाव का विश्वास कर ये ही धर्म करने की प्रारंभिक क्रिया है रात्रि को लड़का अपना देरी से घर आवे तो चैन नहीं पड़ती है उसे ढूढ़ने को जाना पड़ता है लेकिन आत्मा स्वयं प्रभु है उसे तू भूल गया है स्वय खो गया है उसे कभी ढूढ़ने की दरकार नहीं करता अपने आत्मा की प्रभुता को पहचान लेना ही श्रेयस्कर है।

कविवर पं० बनारसीदास जी अकबर बादशाह के दरबार के रत्न थे, जिस वक्त सामायिक कर रहे थे तो ध्यानस्त अपनी आत्मा में मगन होकर अपने हृदय से द्वैत भाव को इस प्रकार निकाल रहे थे।

पिय से मिले अपनयो खोय, ओला गलि पानी जिम होय।

अर्थात् वे अपने उपास्य से इस तरह मिल जाना चाहते हैं जिस तरह ओला पानी में गलकर अपने अस्तित्व को मिटा देता है जब एक आत्मा का दरिया उमड़ा तब उसमें मैं और

तू का भेद ही कहां रहता, एक बूंद की तरह वे अपने को अनन्त सागर में विलीन कर देना चाहते हैं।

दूसरी भावना

मगन होऊँ मैं दर्शन पाय, ज्यों दरिया में बूंद समाय।

कविवर अपनी तन्मयता के चित्र में और सुन्दर रङ्ग भरते हैं आत्म दर्शन होने पर उनकी आत्म-तल्लीनता और भी गहरी हो जाती है व अपने लघु अस्तित्व को विराट रूप में खो देते हैं और एकात्मा को सम्पूर्ण बना देते हैं।

तीसरी भावना

पिय मेरे घट में पिय माँहि, जल तरङ्ग ज्यों दुविधा नाहिं।

जल और उसकी तरङ्गों को किसी ने प्रथक देखा है नहीं केवल कहने को दो नाम हैं किन्तु दोनों का कोई पृथक अस्तित्व नहीं उपास्य उनके घट घट में रमा हुआ है।

चोथी भावना

बाहिर देखूं तो पिय दूर। घट देखे घट में भर पूर॥

वह बाहर कहां मिलता, बाहर तो कही उसका पता भी नहीं उसकी कहां खोज की जाती वह तो घट में ही सम्पूर्णतया समाया है कवि आत्मानन्द में मग्न हो जाते हैं और पूर्ण तृप्ति का अनुभव करते हैं।

पं० बनारसीदास जी का उपदेश हे संसारी आत्मा !

कवित्त

भैया जगवासी तू उदासी ह्वै के जगत सों।
एक छह महीना उपदेश मेरो मानुरे॥
और संकल्प विकल्प के विकार तज।
बैठ के एकान्त मन एक ठौर आनरे॥
तेरो घट सरता में तू ही है कमलता को।
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानरे॥
प्रापतन ह्वै है कछु ऐसो तू विचारतु है।
सही ह्वै है प्रापतु सरूप योही जानु रे॥

हे भाई संसारी जीव तू इस असार संसार से विरक्त होकर एक छह महीना के लिए मेरा सिखापन मानले और एकान्त में घर को छोड़ कर कोई ध्यान की जगह जहां सत्समागम का सच्चा रागद्वेष रहित स्थान हो और सर्व गृहस्थी के संकल्प विकल्प छोड़कर तू एकाग्र चित होकर तेरे हृदय रूप सरोवर में तू ही कमल बन और तू ही भौंरा बनकर अपने स्वभाव भाव की सुगंध लेकर तो देख जो तू यह सोचता है क्या इसमें रक्खा है सो नियम से तुझे तेरे स्व स्वरूप की प्राप्ती होगी आत्म सिद्धि का ये ही उपाय है।

शिक्षाएँ हित का उपदेश

१. काम, भोग आकाश में उत्पन्न हुये इन्द्र धनुष समान हैं।
२. आयु पानी की लहरों के समान है।
३. संतोष वाला जीव सदा सुखी है।

४. तृष्णा वाला जीव सदा भिखारी है दुःखी है।
५. मादक पदार्थ मन की कुमार्ग पर ले जाते हैं।
६. मोह ही संसार का प्रबल कारण है।
७. सुख तो संतोष ही में है, तृष्णा संसार का बीज है।
८. चंचल चित्त सब विषय दुःखों का मूल है।
९. जिसने आत्मा जाना है उसने सब कुछ जान लिया।
१०. जहां सत्य है वहीं धर्म है फिर विजय ही विजय है।
११. शास्त्र अभ्यास के लिए नियमित काल होना चाहिए।
१२. भलाई बुराई तो सभी को आती है परन्तु श्रेष्ठ भलाई करना है बुराई तो अधमा अधम है।
१३. आलस्य में दरिद्रता का वास है और लाइलाज है।
१४. जो पुरुषार्थ करता है उसके कमला का वास है।
१५. परमात्मा आत्मप्रेम से निःसन्देह दीखता है।
१६. कष्ट हों लाखों मगर इसकी न कुछ परवाह कर।
१७. शुद्ध हृदय के भीतर प्रेम का ज्ञान होता है।
१८. मन की पवित्रिता सत्य भाषण से ही सिद्ध होती है।
१९. दया धर्म से बढ़कर दूसरी कोई नेकी नहीं है।
२०. तूफानी समुद्र को तिर कर वही पार सकता है जो उस धर्म मुनीश्वरों के चरणों की सेवा करते हैं।

प्राणायाम की विधि

शरीर की शुद्धि तथा मन को एकाग्र करने के लिये प्राणायाम का अभ्यास सहायक है यद्यपि वह ऐसा जरूरी नहीं है कि इसके बिना आत्मध्यान न हो सके इसलिए

जिसने किसी प्राणायाम के ज्ञाता विद्वान से प्राणायाम नहीं सीखा हैं वह भी ज्ञान व आत्मबल से आत्मध्यान पीछे लिखे मुताविक उपायों द्वारा ध्यान के चित्रों के साधन से कर सकता है उसका मन स्वयं बिना आकुलता के ठहर सकता है रोज अभ्यास करता रहे तीन प्रकार से प्राणायाम है—

१. पूरक २. कुंभक ३. रेचक।

१—तालु के छेद से या बारह अंगुल पर्यंत से पवन को खींच कर अपने शरीर में भरना सो पूरक है।

२—उस खीची हुई पवन को नाभि के स्थान पर रोके नाभि से जगह-जगह न चलने दे जैसे घड़े को भरते हैं वैसे भरे उसको कुंभक कहते हैं।

कृष्ण पक्ष की प्रतिप्रदा दूज व तीज को प्रातःकाल दाहिना सूर्य स्वर चलना शुभ लक्षण है फिर तीन दिन प्रातः काल स्वर बदलता रहे यदि इससे विरुद्ध स्वर चले तो अशुभ लक्षण जानने चाहिए तो भी एक स्वर नाक बाई तरफ या दाहिनी तरफ बराबर का हो जाता है किसी आचार्य ने २४ में १६ बार पवन का पलटना लिखा है बाएं स्वर को हितकर व दाहिने स्वर को अहितकर बताया है स्वरों के द्वारा है मंत्र को ध्यान की विधि नीचे प्रकार है इससे स्वर शुद्ध होता है पहिले नाभि के कमल के मध्य में (ईं) को चन्द्रमा के समान चमकता हुआ विचारे फिर उसी को विचारे कि दाहिने स्वर से बाहर निकाल और चमका हुआ आकाश में ऊपर को चला गया फिर लौटा और बाएँ स्वर भीतर प्रवेश नाभि कमल में ठहर गया।

उसी पवन को अपने कोठे से धीरे-धीरे बाहर निकाले सो रेचक है। अभ्यास करने वाले को पवन को भीतर लेकर थामने का फिर धीरे-धीरे बाहर तालुए के द्वारा ही निकालने का अभ्यास करना चाहिये जितनी अधिक देर तक थाम सकेगा वो ही मन को थिर अधिक देर तक कर सकेगा नाक से काम न लेकर तालु से ही खीचना व बाहर निकालना चाहिये सहारा नाक का जरूर लेना पड़ेगा।

खुली स्वच्छ हवा में बहुत लाभदायक होता है जैसे नाभि के कमल में पवन को रोका जावे वैसा हृदय कमल के वहां भी रोका जा सकता है।

प्राणायाम में चार मण्डल पहचानने चाहिये। १. पृथ्वी मंडल २. जल मंडल ३. पवन मंडल ४. अग्नि मंडल।

१. पीले रंग का चौकोर पृथ्वी मंडल है जब नाक के छेद को पवन से भर कर आठ अंगुल बाहर तक पवन मन्द मन्द निकालता रहे तब पृथ्वी मण्डल को पहचानना चाहिए यह पवन कुछ गरम सी होती है।

२. अर्ध चन्द्रमा के समान सफ़ेद वर्ण जल मण्डल है इस मंडल में पवन शीघ्र नीचे की तरफ ठंडक को लिये ही १२ अंगुल बाहर तक बहती है।

३. नीले रंग का गोल पवन मंडल है इसमें पवन सब तरफ बहती हुई ६ अंगुल तक बाहर आवै वह गरम वो ठंडी दोनों तरह की होती है।

४. अग्नि के फुलिंग के रंग तेज के समान तीन कोने के आकार अग्नि मंडल है।

इसमें पवन ऊपर को जाता हुआ चार अंगुल तक बाहर आवे यह गरम होती है।

नाक के स्वर दो हैं बाईं तरफ के स्वांस को चन्द्र वो दाहिनी तरफ के स्वांस को सूर्य कहते हैं एक मास की शुक्ल पक्ष की पड़वा (प्रतिपदा) दूज व तीज इन तीन दिन प्रातः काल वामसुर चन्द्र स्वर चलना शुभ लक्षण है फिर तीन दिन प्रातःकाल दाहिना फिर तीन दिन प्रातःकाल बायां इस तरह १४ दिन तक बदलता रहता है। इस तरह बार बार अभ्यास करता (ईं) को घुमाकर नाभि कमल में ठहरावे। विशेष कथन श्री ज्ञानार्णवजी ग्रन्थ श्री शुभचन्द्राचार्य कृत से देखना यह सब साधन एकांत स्थान स्वच्छ हवा सामने वनखंड हरियाली स्त्री-पुरुष, नपुंसक कोलाहल जहां न हो करने से चित्त को बड़ी शांति और सुधा अमृत के घूंट आते हैं इस वखत इस संसारी प्राणी को इतनी आकुलता बढ़ी हुई है। कि दो पुरुषार्थ यानी अर्थ रोजगार करना काम यानी भोग-विलास करना ही श्रेयस्कर बाल्य अवस्था से मरण पर्यन्त रह गये हैं धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ को तो बिलकुल तिलांजलि ही दे दी है योगाभ्यास तो बहुत दूर है इससे संयोग के साथ वियोग निश्चय है संसार असार है इसमें कुछ समय धर्म ध्यान शास्त्र स्वाध्याय सन्तसमागम में व्यतीत करने वाला ही इस जीवन-मरण रूपी संसार से मुक्त हो सकता है इसलिए इसको भी मनुष्य जन्म धारण करने का प्रथम अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

सरल उपाय

स्वांस के द्वारा नाम जपे ।

मन को रोककर परमात्मा में लगादे जिसको सभी प्राणी कर सकते हैं आने जाने वाली प्रत्येक समय की स्वाँस-अस्वांस की गति पर ध्यान रखकर स्वांस के द्वारा श्री भगवान का नाम का जाप्य देना यह अभ्यास उठते बैठते सोते चलते-फिरते खाते-पीते हर समय हर एक अवस्था में किया जा सकता है इसमें स्वांस जोर जोर से लेने की भी जरूरत नहीं है साधारण चाल के साथ नाम स्मर्ण किया जा सकता है। इस क्रिया से समझना चाहिये भगवान प्रति समय मेरे पास ही हैं और उनके स्वरूप का ज्ञान गुणानुवाद का मान बंध को छेड़ता है बाजीवखत तो यह क्रिया करने वाला बिलकुल संसार की सुध.बुध ही भूल जाता है और उसका ध्यान उपयोग एकाग्रता तन्मयता हो जाता है जेसे कोई बात को फिर उससे पूछता है तो कहता है फिर से कहो मेरा ध्यान दूसरी तरफ था—यह साधन वड़ा ही उपकारी और सरल है।

ईश्वर शरणागति

ईश्वर प्राणिधान से भी मनवश में होता है प्रनन्य भक्ति से परमात्मा के शरण होना ईश्वर प्राणिधान कहलाता है ईश्वर शब्द से ही यहाँ पर परमात्मा और उनके भक्त दोनों ही समझे जा सकते हैं वे ईश्वर से **निकटवर्ती भगवान के पुत्र के समान ही समझे जाये हैं** कहा भी है। भेद विज्ञान जम्यो जिनके चित्त, शीतल चित्त भयो जिम चंदन केलि करें

शिव मारग में. जग मांहि जिनेश्वर के लघु नंदन। **तथा—** **ब्रह्मविद ब्रह्मैवभवति तन्मयाः पते सादीयाः•** इससे एकाग्रता सिद्ध हो जाती है और शुद्ध आत्म चितवन से चित्त को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है संसार का बन्धन मोह रूपी पिशाच आप से आप भागने लगता है भगवान कृपा से सब कुछ होता है।

मन के कार्यों को देखना

मन को बश में करने का एक ये ही उत्तम साधन है कि मन से अलग होकर कुछ देर के लिए उसकी क्रियाओं को देखता रहे जब तक हम मन के साथ मिले हुए हैं तभी तक उसमें चंचलता है वास्तव में तो मन से सर्वथा हम भिन्न हैं किस समय मन में क्या-क्या संकल्प विकल्प होता है पूरा हमको रहता है बंबई में बैठे हुये एक मनुष्य के मन में कलकत्ता के किसी दृश्य का संकल्प होता है इस बात को वह अच्छी तरह जानता है यह निर्विवाद सिद्ध है जानने वो देखने वाला जीव जुदा है आँख को आँख नहीं देख सकती इस न्याय से मन की बात को जो जानता देखता है वह मन से सर्वथा भिन्न है मन जड़ पदार्थ है शरीर जड़ सहित पांचों इन्द्रियों और छठां मन उनका राजा हैं यह जीव भिन्न होने हुये भी वह अपने को मन के साथ मिला लेता है इसी से उसका जोर पाकर उसकी उदण्डता बढ़ जाती है यदि साधक अपने को निरन्तर अलग रख कर मन की क्रियायों का दृष्टावन• कर देखने का अभ्यास करे तो मन में बहुत ही शीघ्र बश में संकल्प विकल्पों से रहित स्वयं अपनी इच्छानुसार हुकम में चल सकता है ये ही मन के वश करने का उपाय है—

भगवन्त नाम कीर्तन

मग्न होकर उच्च स्वर से परमात्मा का नाम और गुणों का कीर्त्तन करने से भी मन परमात्मा में स्थिर हो जाता हैं भगवान की मूर्ति में मन को निरुद्ध कर लगाने से भक्त जब अपने प्रभु का नाम कीर्त्तन करते-करते गद्‌गद् कण्ठ, रोमांचित. और मधुर स्वर से तल्लीन होकर अश्रुपात पूर्ण लोचन होकर प्रेमावेष में अपने-अपने आपको सर्वथा भूल जाता हैं केवल परमात्मा के रूप में तन्मयता प्राप्त कर लेता है तब भला मन को जीतने में और कौन सी बात बच रहती है अतएव प्रेमपूर्वक कीर्त्तन करना मन पर विजय पाने का एक अत्युत्तम साधन है ।

ध्यान करिये

ॐ नमः ३ बार वीतरागायनमः समय सारायनमः, सोऽहं, बुद्धोऽहं. निरंजनोऽहं. सिद्धोऽहं, शुद्धोऽहं, नो कर्म रहितायनमः भाव कर्म रहितायनमः, प्रव्यकर्म रहितायनतः परम शुद्धायनमः थरपरणात रहितायनमः, पर विछार रहितायनमः वन्दे जिनवरं, जिनवरं वेदे—

फिर विचार करो

मैं अनन्त गुणों का सागर हूं, मैं मोह भाव को दूर करूं ।
मैं अनन्त ज्ञान का आगर हूं, मैं ज्ञान भाव को प्राप्त करूं ।।
मैं सुख शांति का गागर हूं, मैं निज आतम में लीन रहूं ।
मैं शिव नगरी का नागर हूं, मैं स्वयं सिद्ध पद प्राप्त करूं ।

आत्म ज्ञान सूर्योदय

ईस्वी सन् से लगभग ६०० वर्ष पूर्व !
भारत के अध्यात्मिक जीवन में
विवेक शून्य क्रिया काण्डों और
धार्मिक अन्ध विश्वासों का बोल बाला था !
यज्ञों की वेदी पर मूक पशुओं की बलि चढ़ाई जा रही थी !
और इसे धर्म माना जा रहा था !!
अन्ध विश्वासों, शून्य क्रिया काण्डों, और वेद मंत्रों के समक्ष
अनन्य हिंसाओं की इन काली घटाओं को चीर कर
सहसा एक बाल रवि शाश्वत धर्म ज्योति पुंज
भारत के आध्यात्मिक क्षितिज पर चमक उठता है।
चारों ओर सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन का प्रकाश जगमगाने
लगता है।
इस धर्म क्रान्ति का सजीव चित्र भगवान महावीर स्वामी के
जीवन में स्वयं प्रगट होता है !!!

युग-दर्शन

आइए, जरा अपनी स्मृति को पुराने भारत में ले चलें।

कितने पुराने भारत में ?

यही करीब छब्बीस शताब्दो पुराने में।

.....हा हन्त ! यह सब क्या हो रहा है ? लाखों मूक पशुओं की लाशें यज्ञ की बलि-वेदि पर तड़प रही हैं। भोले-भाले मानव-शिशु और पकी आयु के वृद्ध भी देव-पूजा के वहम में मौत के घाट उतारे जा रहे हैं। शूद्र भी तो मनुष्य हैं। इन्हें क्यों मनुष्यता के सर्वसामान्य अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया है। मातृ-जाति का इतना भयंकर अपमान ! सामाजिक क्षेत्र में रात-दिन की दासता के सिवा इनके लिए और कोई काम ही नहीं ? प्रत्येक नदी-नाला, प्रत्येक ईंट-पत्थर, प्रत्येक झाड़-झंखाड़ देवता बना हुआ है। और मूर्ख मानव-समाज अपने महान् व्यक्तित्व को भुलाकर इनके आगे दीन-भाव से अपना उन्नत मस्तक रगड़ता फिर रहा है। आध्यामिक और सांस्कृतिक पतन का इतना भयंकर दृश्य ! हृदय कांप रहा है।

जी हां, यह ऐसा ही दृश्य है। आप देख नहीं रहे हैं, यह आज से छब्बीस शताब्दी पुराना भारत है, और ये सब लोग उस

पुराने भारत के निवासी हैं। आज भी इनके तत्कालीन जीवन की झांकी वेद और पुराणों के पृष्ठों पर अंकित है।

क्या इस युग में भारत का कोई उद्धार-कर्ता नहीं हुआ? क्या उस समय इन विचारमूढ़ लोगों को समझाने-बुझाने वाला कोई उपदेशक नहीं मिला? अन्ध-विश्वास की इस प्रगाढ़ अन्धकारपूर्ण काल-रात्रि में ज्ञान-सूर्य का उज्ज्वल आलोक फैलाने वाला क्या कोई महापुरुष अवतरित नहीं हुआ?

अवश्य हुआ।

कौन?

भगवान् महावीर।

यह प्रकृति का अटल नियम है कि जब अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है, अधर्म धर्म का मोहक बाना पहनकर जनता को भ्रम-बन्धन में बांध लेता है, तब कोई-न-कोई महापुरुष समाज, राष्ट्र एवं विश्व का उद्धार करने के लिए जन्म लेता ही है। भारत वर्ष की तत्कालीन दयनीय दशा भी किसी महापुरुष के अवतरण की प्रतिक्षा कर रही थी। अतः भगवान् महावीर ने भारत के उद्धार के लिए तत्कालीन विदेह और आज के बिहार प्रदेशवर्ती वैशाली महानगरी के उपनगर क्षत्रियकुण्ड में, ज्ञातक्षत्रिय राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के यहां जन्म ग्रहण किया। भारत के इतिहास में चैत्रशुक्ला त्रयोदशी का वह पवित्र दिन है, जोचिरकाल तक जनमानस में अविस्मरणीय बना रहेगा। भगवान् महावीर के जन्मदिन होने का सौभाग्य इसी पवित्र दिन को प्राप्त हुआ था।

साधना-पथ पर !

महावीर राजकुमार थे। सब प्रकार का सांसारिक सुख-वैभव चारों ओर बिखरा पड़ा था। दुःख क्या होता है ? कुछ भी पता न था। यह सब कुछ था। परन्तु महावीर का हृदय फिर भी कुछ अनमना-सा, उदास-सा रहता था। भारत का धार्मिक तथा सामाजिक पतन उन्हें बेचैन किये हुए था। क्रान्ति की प्रचण्ड ज्वाला अन्दर-ही-अन्दर धधक रही थी। हृदय-मन्थन चलता रहा। दो वर्ष तक गृहस्थ-जीवन में ही तपस्वियों-जैसी उग्र साधना चलती रही। अन्ततोगत्वा तीस वर्ष की भरी जवानी में मार्गशिर (मंगसिर) कृष्णा दशमी के दिन विदेह की विशाल राज्य-लक्ष्मी को ठुकरा कर वे पूर्ण अकिंचन भिक्षु बनकर निर्जन वनों की ओर चल पड़े।

प्रश्न हो सकता है कि भगवान् महावीर ने भिक्षु होते ही उपदेश की अमृतवर्षा क्यों न की। बात यह है कि महावीर आजकल के साधारण सुधारकों-जैसी मनोवृत्ति न रखते थे कि जो कुछ मन में आए, झट-पट कह डाला, करने-धरने को कुछ नहीं। उनकी तो यह अटल धारणा थी—'जब तक नेता अपने जीवन को न सुधार ले, अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त न कर ले, तब तक वह प्रचार-क्षेत्र में कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।' महावीर इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए साढ़े बारह वर्ष तक कठोर तप:साधना करते रहे। मानव-समाज से प्रायः अलग-थलग सूने जंगलों तथा पर्वतों की गहन गुफाओं में रहकर आत्मा की प्रसुप्त अनन्त आध्यात्मिक शक्तियों को जगाना ही उन दिनों उनका एकमात्र कार्य था। एक-से-

एक मनमोहक प्रलोभन आंखों के सामने से गुजरे, एक-से-एक भयंकर आपत्तियों ने चारों ओर चक्कर काटा, परन्तु महावीर हिमालय की भाति सर्वथा अचल और अडिग रहे। आज जिन घटनाओं के पठन-मात्र से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप में जिस जीवन पर गुजरी होंगी, वह कितना महान् होगा।

केवल ज्ञान प्राप्ति :

अनन्य कठिन तपस्याओं, आपत्तियों और भयंकर यातनाओं के मध्य भगवान महावीर की उग्र साधनाएं, ध्यान, और समाधियां निरंतर साढ़े बारह वर्ष तक चलती रहीं।

अहिंसा और सत्य की पूर्ण साधना के बल से आत्मा की समस्त कालिमा धुल चुकी थी, पवित्रता और स्वच्छता की निर्मल रेखाएं प्रस्फुटित हो चुकी थीं, आत्मा की अनन्त ज्ञान-ज्योति जगमगा उठी थी। अतः वैशाख शुक्ला दशमी के दिन ऋजुवालुका नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में भगवान् महावीर ने केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन का अखण्ड प्रकाश प्राप्त किया। अब वे तीर्थङ्कर की भूमिका पर पहुंच गए।

जैन-धर्म की मान्यता के अनुसार कोई भी मनुष्य जन्म से भगवान् नहीं होता। भगवत्पद की प्राप्ति के लिए साधना के विकट पथ पर चलना होता है, जीवन को निष्काम एवं निष्पाप बनाना होता है। सेवा, सद्भाव और संयम की उच्चतम साधना करनी होती है। तब कहीं मनुष्य भगत्पद का अधिकारी

होता है। भगवान् महावीर का जीवन हमारे समक्ष आध्यात्मिक विकासक्रम का एक उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करता है।

धर्म-संघ :

भगवान महावीर को ज्योंही केवल-ज्योति के दर्शन हुए, वे अपने एकांत साधनारत जीवन को बन से हटाकर मानव-समाज में ले आए। इन्द्रभूति गौतम, जो अपने समय के एक धुरन्धर दार्शनिक, साथ-ही-साथ क्रियाकाण्डी ब्राह्मण माने जाते थे, पावापुर में विशाल यज्ञ का आयोजन कर रहे थे। भगवान् महावीर की पहली तत्वचर्चा इन्हीं के साथ हुई। गौतम पर उनके दिव्य ज्ञान-प्रकाश एवं अखण्ड तपस्तेज का वह विलक्षण प्रभाव पड़ा कि वे सदा के लिए यज्ञ-वाद का पक्ष त्याग कर भगवत्पद-कमलों में दीक्षित हो गये। इनके साथ ही चार हजार चार सौ (4400) अन्य ब्राह्मण विद्वानों ने भी भगवान् के पास मुनि-दीक्षा धारण की। भगवान् के अहिंसा-धर्म की यह सबसे पहली विजय थी, जिसने भारत की चिर-निद्रित आंखें खोल दीं। उक्त घटना के बाद भगवान् महावीर जहां भी पधारे, धर्म-पिपासु जनता समुद्र की भांति उनकी ओर उमड़ती चली गई।

धर्म क्रांति :

भगवान् महावीर के अहिंसा-प्रधान तथा सदाचारमूलक धर्मोपदेश ने भारत की काया-पलट कर दी। हिंसक विधि-विधानों में लगे हुए बड़े दिग्गज विद्वान् भी भगवान् के चरणों

के पुजारी बन गये। उन्होंने दलित मानवता के विकास और अभ्युदय के लिए प्रबल आन्दोलन चालू किया। तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक भ्रान्त रूढ़ियों के प्रति वह महान् सफल अभियान किया कि अन्धविश्वासों के सुदृढ़ दुर्ग ढह-ढह कर भूमिसात् होने लगे, भारत में चारों ओर क्रान्ति की वेगवती धारा बह निकली। दम्भ और आडंबर पर टिके हुए धर्म-गुरुओं के स्वर्ण-सिंहासन हिल उठे। उनका विरोध भी बड़े जोरों से हुआ। प्राचीनता के पुजारियों ने प्रचलित परम्पराओं की रक्षा के लिए जी-तोड़ प्रयत्न किये, मनमाने आक्षेप भी किये, परन्तु महापुरुष आपत्तियों की शैलशृङ्खलाओं से क्या कभी रुका करते हैं ? वे तो अपने निश्चित ध्येय पर प्रतिपल आगे बढ़ते ही रहते हैं, और अन्त में सफलता के सिंह-द्वार पर पहुंचकर ही विश्राम लेते हैं।

नारी जाति के उद्धारक

भगवान् महावीर मातृ जाति के प्रति भी बड़े उदार विचार रखते थे। उनका कहना था कि "पुरुष के समान ही स्त्री को भी प्रत्येक धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में बराबर का अधिकार है। स्त्री जाति को हीन एवं पतित समझना निरी भ्रान्ति है।" अतएव भगवान् ने भिक्षु-संघ के समान ही भिक्षुणियों का भी एक संघ बनाया, जिसकी अधिनेत्री चन्दनवाला' थीं, जो अपने संघ की सब प्रकार की देख-रेख स्वतन्त्र रूप से किया करती थी।

भगवान् महावीर के संघ में जहां भिक्षुओं की संख्या चौदह हजार थी, वहां भिक्षुणियों की संख्या छत्तीस हजार

थी। श्रावकों की संख्या 1,59,000 थी, तो श्राविकाओं की संख्या 3,18,000 थी। स्त्री जाति के लिए भगवान् के धर्म-प्रवचन में कितना महान् आकर्षण था, इसकी एक निर्णयात्मक कल्पना इन संख्याओं द्वारा की जा सकती है।

जाति बनाम कर्म

भगवान् महावीर के द्वारा तत्कालीन शूद्र जातियों को भी उत्थान का महान् अवसर प्राप्त हुआ। वे जहां भी गए, सर्वत्र सर्वप्रथम एक ही सन्देश लेकर गए कि––"मनुष्य-जाति एक है, उसमें जात-पांत की दृष्टि से विभाग की कल्पना करना किसी भी प्रकार उचित नहीं। ऊंच-नीच के सम्बन्ध में उनके विचार कर्म-मूलक थे, जाति-मूलक नहीं। उनका उपदेश था कि मनुष्य जाति से नहीं, कर्म से ही ऊंच-नीच होता है। यह बात नहीं थी कि, वे आजकल के उपदेशकों के समान मात्र उपदेश देकर ही रह गये हों। हरिकेशबल-जैसे चाण्डालों को भी अपने भिक्षु-संघ में सम्मानपूर्ण अधिकार देकर, उन्होंने जो कुछ कहा, वह करके भी दिखाया। आगम-साहित्य में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जहां वे किसी राजा, महाराजा अथवा ब्राह्मण या क्षत्रिय के महलों में विराजे हों। हां, पोलासपुर में सद्दाल कुम्हार के यहां विराजना उनकी पतित-पावनता का वह उज्ज्वल आदर्श हैं, जो कोटि-कोटि युगों तक अजर-अमर रहकर संसार को समता और दीन-बन्धुता का पाठ पढ़ाता रहेगा।

सर्वतोमुखी जीवन

भगवान् महावीर के जीवन के सम्बन्ध में क्या कुछ कहा जाय ? उनका जीवन एकमुखी नहीं, सर्वतोमुखी था। हम उन्हें किसी एक ही दिशा में बढ़ते नहीं पाते, प्रत्युत जिस क्षेत्र में भी देखते हैं, वे सबसे आगे और आगे दिखलाई देते हैं। आगम-साहित्य तथा तत्कालीन अन्य साहित्य पर दृष्टिपात कर जाइए। आप भगवान् महावीर को कहीं विलासी एवं अत्याचारी राजाओं को धर्मपरायण बनाते पाएंगे, तो कहीं दीन-दरिद्र गृहस्थों को पापाचार से बचाते पाएंगे। कहीं भिक्षुओं के लिए वैराग्य का समुद्र बहाते पाएंगे, तो कहीं गृहस्थों के लिए नीति-मूलक शिक्षाएं देते पाएंगे। कहीं प्रौढ़ विद्वानों के साथ गम्भीर तत्त्व-चर्चा करते पाएंगे, तो कहीं साधारण जिज्ञासुओं को कथाओं के माध्यम से अति-सरल धर्म-प्रवचन सुनाते पाएंगे। कहीं गणधर गौतम जैसे प्रिय शिष्यों पर प्रेम की अमृत-वर्षा करते पाएंगे, तो कहीं उन्हीं को गलती कर देने के अपराध में स्पष्ट परिबोध भी सुनाते पाएंगे। बात यह है कि भगवान् को जहां कहीं भी, जिस किसी भी रूप में हम पाते हैं, सर्वथा अलौकिक एवं अद्‌भुत पाते हैं।

निर्वाण :

15 अक्तूबर 527 ई. पू. की ब्राह्म मुहूर्त की वेला में, तीर्थंकर भगवान् महावीर, पावापुर के मनोहर उद्यान में, मणिमयी शिला पर विराजमान सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो निर्वाण प्राप्त करते हैं।

इन्द्र तथा सुर-असुर निकाय विभिन्न संकेतों से सूचनापाकर तुरन्त पावापुर में आते हैं। अत्यन्त हर्ष उल्लास के साथ दीप-मालिका जगाकर दीपावली का उत्सव मनाते हैं। कहा जाता है कि, नौ मल्लों और नौ लिच्छवि गणराज्यों के प्रमुखों ने भगवान् का निर्वाण महोत्सव दीपोत्सव के रूप में मनाया था। उनका कथन था, "अनन्त ज्योति निर्वाण को प्राप्त हो गई है। इसलिए स्मृति रूप में यह दीपोत्सव मनाया जा रहा है।"

महान जीवन

भगवान् महावीर के महान् जीवन की झांकी वर्णमाला के सीमित अक्षरों में नहीं दिखलाई जा सकती। भगवान् महावीर का जीवन न कभी पूरा लिखा गया है और न कभी लिखा जा सकेगा। अनन्त आकाश के गर्भ में असंख्य विहंगम उड़ानें भर चुके हैं, पर आकाश की इयत्ता का पता किसे है? अतः यह प्रयास मात्र भगवान् के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण करने और जिज्ञासुओं को उनके दिव्य एवं विराट् जीवन की केवल एक हल्की-सी झांकी दिखाने के लिए है।

धर्म प्रभाव :

भगवान् महावीर के धर्म प्रभाव के कारण मगध, विदेह, अंग, बंग, कलिंग, उड्र, काशी, कैलाश, वत्स, कुरु, पंचाल, शूर सेन, मालव, मलय, सिन्धु सौवीर आदि अनेक राज्यों के नरेश, इनके अनन्य भक्त हो गए। कई राजा महाराजा तो उनसे दीक्षा ले धर्म संघ की उप-सम्पदा को प्राप्त हुए। भगवान् ने

उपरोक्त राज्यों के अतिरिक्त भारत के प्राय: सभी राज्यों में सिन्ध से लेकर बंगाल तक और कशमीर और गान्धार से लेकर कर्नाटक और द्राविड़ तक ग्राम-ग्राम और नगर-नगर, अपने समवसरण के साथ, पैदल विहार कर धर्म पिपासी मानव समाज को ज्ञानामृत पिलाया, धर्म देशना दी, और उन्हें मुक्ति का मार्ग बता कर शांति प्रदान की। भोग-विलास में सर्वथा और सतत लिप्त रहने वाले धनी नौजवानों पर भी प्रभु के अपूर्व वैराग्य का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं तथा सेठ-साहूकारों के सुकुमार पुत्र भी भगवान् महावीर के चरणों में दीक्षित होकर तप, क्षमा, सहज, तितिक्षा, त्याग और सदाचार का संदेश लिये गांव-गांव घूमने लगे। मगध-सम्राट् श्रेणिक की उन महारानियों को, जो कभी पुष्पशय्या से नीचे पैर तक न रखती थीं, जब हम भिक्षुणियों के रूप में साधारण घरों से भिक्षा मांगते हुए और जनता को धर्म-शिक्षा देते हुए, कल्पना के चित्र-पट पर लाते हैं, तो हमारा हृदय सहसा हर्ष से गद्-गद् हो उठता है। राजगृह के धन्ना और शालिभद्र जैसे धन-कुबेरों के जीवन-परिवर्तन की कथाएं कट्टर-से-कट्टर भोगवादी के हृदय को भी परिवर्तित कर देने वाली हैं।

विश्वव्यापी प्रभाव :

उस समय तीर्थंकर महावीर के उपदेश केवल भारतवर्ष में ही नहीं, देश-देशान्तरों में भी अलख ज्योति प्रकाशित कर रहे थे। 580 ई. पू. में उत्पन्न यूनानी दार्शनिक विद्वान पैथा-

गोरस ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अपने देशवासियों को पुनर्जन्म एवं कर्म-सिद्धान्त की शिक्षा दी थी, और उन्हें बताया था कि वनस्पति में भी जीव होते हैं, इसलिए हिंसा और मांसाहार से दूर रहना चाहिए। स्वयं पैथागोरस जैनों की भांति अहिंसा धर्म का पालन करता था और कई अभक्ष्य शाक-सब्जियों का भोजन नहीं करता था। यूनान के राजा डेमेट्रियस तीर्थंकर महावीर के अनन्य भक्त थे। उन्होंने आत्म-ध्यान की साधना के लिए अपने यहां भगवान् महावीर की मूर्ति की स्थापना की थी। फिलिस्तीन के महात्मा मूसा के जीवन पर भी तीर्थंकर महावीर की शिक्षाओं का प्रभाव बताया जाता है। उनका अहिंसा का सन्देश ईरान से आगे फिलिस्तीन, मिस्र और यूनान तक पहुंच गया था। फिलिस्तीन के एस्सेन (Essen) लोग-कट्टर अहिंसा वादी थे। मिस्र में शाकाहार का प्रचलन था। 81 ई. में भृगुकच्छ के, श्रमणाचार्य ने एथेन्स में पहुंच कर अहिंसा धर्म का प्रचार किया था। कहा जाता है कि 892-999 ई. तक अफगानिस्तान के राज्य-सिंहासन पर समनीडेस नामक राजा ने शासन किया था, जो जैनधर्मावलम्बी था। भगवान् महावीर के युग में पारस देश का भारतवर्ष से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। ईरान के इतिहास प्रसिद्ध सम्राट् कुरुष का पुत्र राजकुमार आर्द्रक (अद्दइज्ज) तीर्थंकर महावीर का अनुयायी था। उसने भगवान् महावीर के पास आकर दीक्षा धारण की थी। उस युग में ईरान में अहिंसा और अपरिग्रह का व्यापक प्रचार था।

भगवान् महावीर की मुख्य शिक्षाएं

1. मनुष्य अपने चिंतन (विचार) वाणी और कर्म से महान बनता है : जन्म कुल या जाति से नहीं ।
2. मनुष्य स्वयं शुभ कर्म करके अपने सुखों का सृजन करता है : दुष्कर्म करके दुःखों के बीज बो लेता है ।
3. अहिंसा, सत्य, आस्तेय, (चोरी-ठग्गी-जुआ न खेलना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पांच धर्म के आधार स्तम्भ हैं । इन्हें जीवन में धारण करो ।
4. क्रोध, अभिमान, छल, लोभ और काम-विलासिता मनुष्य को पतन की ओर ले जाते हैं । पहले मनुष्य का पतन करते हैं, फिर उसे दुखों के भंवर में फंसा देते हैं ।
5. क्षमा वीरस्य भूषणम् । सभी प्राणियों में हमारे समान ही आत्मा है । अतः मन वचन और कर्म से किसी को परेशान न करो ।
6. आत्म विकास से पहले मांस, मदिरा, जुआ, चोरी, व्यभिचार का त्याग आवश्यक है ।
7. हे मानव ! मनुष्य जीवन बहुत कठिनता से मिला है। आत्मशुद्धि कर, और परम ज्ञान और परम आनन्द को प्राप्त कर ले ।

A team of local doctors (Homoeopaths)
(For the cause of suffering homanity)
Advices the public to
CONSULT BOARD OF Homoeopathic Physiciahs for chronic & complicated diseases : at D-2/9 Model Town III

ENQ :—Phones : 224057, 274401 & 742864

K. P. W. Roorkee का केश शृंगार **आर्निका हेयर आयल**

सफेद बालों को काले, लम्बे, घने, घुंघराले और मजबूत बनाता है एवं स्मृति बढ़ाता है, विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है आप भी प्रयोग कीजिए ।

Dr. B. R. Sharma
Homoeopath (Regd.) H.M.B. Lucknow
D-2/9, Model Town, Delhi-110009

अपने शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिए भगवान महावीर धर्मार्थ होम्योपैथिक औषधालय डी 2/9 माडल टाउन, दिल्ली में पधार कर निशुल्क इलाज करायें ।

डा० एम० के० जैन,
डा० आर० के० जैन,
डा० सी० आर० जैन

HANS SWEETS

D2/16 Model Town III, Delhi-110009

Special Aarangement for Marriages & Tea Party

PLFASE VISIT FOR DELICIOUS & NOURSHING SWEETS NAMKENS & MILK PRODUCTS

जैन चाट भण्डार

डी 1/1 माडल टाऊन III, दिल्ली-110009

हमारे यहां बढ़िया व स्वच्छ गोल गप्पे, भल्ले, पकौड़ी, आलू की टिक्की, समोसे व पिस्ते-बादाम मलाई की कुल्फी हर समय तैयार मिलती है। शादी व पार्टियों के लिए विशेष प्रबन्ध है ?

कृपया एक बार सेवा का अवसर दें।

VISIT

Jain Commericial College

F-14/53, Model Town, Delhi-9

for

Typewriting, Shorthand & Cyclostyling

Quality Job Work and all sorts of typewriters-repair work is undertaken here at reasonable rates.

जैन स्वीट्स

F-14/19 माडल टाउन दिल्ली

हमारे यहां हर प्रकार की मिठाई नमकीन उपलब्ध हैं

अजित प्रकाश जैन

जैन बेकर्स एण्ड कनफैकशनर्स

F-14/20 माडल टाउन दिल्ली

ओम प्रकाश जैन

MEDICAL KNOWLEDGE FOR THE MILLIONS

CARE AND TREATMENT OF YOUR

MENTAL DISORDERS

Dr. M. K. JAIN
B.Sc., D.H.S., Dip.J., M.A., LL.B

Released by :
Lord Mahaveer Homoeopathic Hospital Trust Society (Regd.)
D-2/9, Model Town, DELHI-9.

50 Paise

ABOUT THE AUTHOR

Dr M. K. Jain, B.Sc., D.H.S., (Hons,), Dip. J., M.A., LL.B. Sahityaratna, Sahityalankar is a writer—editor of 20 years standing in the field of science and medicine, The Homœopathic Directory and Who's Who' published by M/s B, Jain Publishers, New Delhi, is a proof of his sincerity and devotion to the cause of Homœopathy. He is the founder President of the Lord Mahaveer Charitable Homœopathtc Hospital Trust (Regd.) and the Homœopathic Chikitsa Parishad, Delhi. In addition he daily devotes 4-6 hours for free treatment of the patients and has cured more than 150,000 patients so far. He specializes in surgical diseases as well as diseases of cardiac and mental origin. His recent achievement is the establishment of a 'Homœopathic Research Unit on Cancer, Leprosy and Mental Diseases' at Lord Mahaveer Homœopathic Hospital, Model Town, Delhi.

Advantages of Homoeopathy

Homoeopathy cures what can be cured much better than any other system of medicine hitherto made known in the world—*Dr. J Burnett.*

Homoeopathy alone holds the key to the relationship between what a poison can cause and what a poison can cure, and so makes medicine scientific—*Sir John Weir.*

The Homoeopathic physician is guided by an unchanging law in the selection of his remedy, while the orthodox physician is not guided by any principle but acts purely speculatively—*Dr. T. H. Bruckner.*

Homoeotherapeutics presents a definite, concrete and understandable approach to the problem of disease treatment. With the curative results obtained all classes have been more or less charmed—*Dr. W.J. Waffensmith.*

Homoeopathy and allopathy have to supplement each other, both have to know exactly the limit of their efficiency—*Dr. W. Karo.*

Homoeopathy, the greatest therapeutic system of medicine—the only system of therapeutics based upon immutable law —*Dr G. Royal.*